नई राजनीति

अर्थात्

हितोपदेशभाषा

महाकवि श्रीनारायणकृत प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ का
भाषा गद्य और छन्दों में अनुवाद
(पूर्वार्द्ध)

—:०:—

अनुवाद कर्त्ता
श्रीअवधवासीभूपउपनाम
लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक,
रामनरायन लाल, बुकसेलर,
इलाहाबाद

सन् १९२२ ई०

चतुर्थ वार १०००] [मूल्य ।-)

PREFACE TO THE FIRST EDITION.

"THE Hitopadesa," says the eminent author of The Light of Asia, "is a work of high antiquity and extended popularity. The prose is doubtless as old as our own era; but the intercalated verses and proverbs comprise a selection from writings of an age extremely remote."*

The Panchatantra of which the Hitopadesa is a later *rifacimento* "is usually said to have been compiled about the end of fifth century." "But the fables of which it consists are many of them referable to a period long preceding the Christian era. The work may thus be styled the father of all fables; for from its numerous translations have come Æsop and Pilpay and in later days Reineke Fuchs. Originally compiled in Sanskrit it was translated by order of Naushirwan in the sixth century A. D. into Persic. It has since been translated or paraphrased into Hebrew, Arabic, Syriac, Persian, Turkish, French, German, English and almost every known language of the literary world and some ancient book of Sanskrit apologues (of which Hitopadesa is the present representative) is the original source of all the well-known fables current in Europe and Asia for more than two thousand years since the days of Herodotus.†"

As the Persic version known as the *Anwar-i-Suhaili* (The Light of the Canopus) is much studied by Persian scholars in India, a few remarks on its relation to Hitopadesa may not be out of place here. After the usual description of the manner in which the Prime minister *Bazarchamahr* deputed *Barzooa*

---

* Sir Edwin Arnold's Book of Good Counsels.

† Monier William's Indian Wisdom.

to go to India, 'the country where medicinal plants grow which restore a dead man to life. the story opens with a conversation, not between Vishun Sarma and the sons of Raja Sudarshana, but between Bidpai Brahman and Rai Dabishilim. Who these were, it is impossible to surmise. In other respects the rendering follows the original so closely that even the names of animals have been translated or Persianized. *e.g.* *Karatak* (करटक) is *Kalela* کلیله *Sanjivaka* (संजीवक) is *Shanzaba* شنزبه *Mandaka* (मन्दक) is *Mandaba* مندبه *Chitragriva* (चित्रग्रीव), Speckle-neck—is *Mutawaqa* مطوقه (*one having a collar*) and so forth. The rat, however, is *Hiranyaka* (हिरण्यक) in Sanskrit and *Zirak* زیرک wise) in Persian. But as *Hiranya* means gold, I am of opinion that it was originally translated into Zarak زرک from *zar*—gold in Persian) and the *ya* ی was inserted afterwards.

Hitopadesa was first translated into English by Sir W. Jones more than a hundred years ago. It is however the Book of Good Counsels of Sir Edwin Arnold which has made Hitopadesa a favourite book with English readers.

Among ourselves, Hitopadesa is supposed* to have been for the first time translated into Hindi by Lalluji, "the Father of Hindi prose" but who may also be adequately styled 'the warbler of poetic prose, in every sense of the term. For not only do his sentences

* This is a mistake. In the preface to the Benares edition of the Rajniti published in 1854, four Hindi versions of Hitopadesa are mentioned bearing date prior to 1809 the year in which the Rajniti was first published. To this preface the reader is referred for further remarks on Lalluji's performance. The initials of the editor are F. E. H. (Dr. Fitz Edward Hall ?)

in the Prem Sagar, at least rhyme but both Rajniti and the Prem Sagar are written not in *Khari boli* which must have been, as it is now the language of high society in Mathura, Agra and Delhi, but in the form of our vernacular in which poetry is supposed to be written. Lalluji however has not followed Vishnu Sarma's epitome and has taken greater liberties with the original than a translator is expected to take. Verses appropriate to the occasion have been freely taken from older authors and but few of the good counsels have been rendered into verse. As precepts are remembered more easily when put in verse than in prose, a work like the present seemed to be a desideratum. I therefore took up the work in May 1889 when I was at Fyzabad and found Professor Johnson's edition the most suitable guide. I have however omitted some stories as repugnant to modern ideas of a moral class-book especially as it is expected to be placed in the hands of young readers, and with this object the language used is extremely simple.

BALLIA :
6th February 1902. } SITA RAM.

PREFACE TO THE SECOND EDITION.

This little book has been very favourably received by the public. It is now prescribed for the Entrance Examination of the Punjab University. As the first edition has been rapidly exhausted I have brought out a second edition.

MORADABAD :
20th February 1905. } SITA RAM.

पहिली आवृत्ति की भूमिका

—:०:—

अवधपुरी सुखमाअवधि ता मधि स्वर्गद्वारि ।
जगपावनि सरजू जहँा बहति सुहावन बारि ॥
तहँा रह्यो कायस्थ इक श्रीशिवरतउदार ।
श्रीरघुपतिपदकमल महँ ताकी भक्ति अपार ॥
राजनीति यह नव बिरचि तासुत सीताराम ।
बिनवी बुधजन सों करत बसि दर्दरमुनिधाम ॥
है प्रसिद्ध संसकृत महँ नारायण को ग्रन्थ ।
दिखरावन उपदेश दै रुचिर नीति को पंथ ॥
जाकी लल्लूलालजू भाषा-कवि-सिरताज ।
ब्रजभाषाछाया रची मिराटो नृप के राज ॥
बोलीमहँ निजदेशकी अब सोइ मति अनुसार ।
गद्यपद्य अनुवाद रचि करत लोकउपहार ॥

बलिया,
मकर की संक्रान्ति १६५८

सीताराम

श्रीसीतारामाभ्यांनमः

नई राजनीति

—:०:—

कथामुख

सज्जन के सब काज नित करैं सिद्ध गौरीस।
गंग फेन की रेख सम धरे बालससि सीस॥
चेतैं विद्याधन, निजहिं अजर अमर सम जानि।
धर्म करैं चुटिया गहे खड़ी मृत्यु नित मानि॥
विद्या-धन सब धनन में उत्तम मानो जाय।
घटै नहीं, बँटि ना सकै, चोर न सकै चुराय॥
विद्या तें उपजत विनय, विनय करत नर जोग।
जोग लहे धन, धन धरम, धरमहि से सुख भोग॥
ज्ञान शस्त्र औ शास्त्र को सीखन हैं सब कोइ।
हँसैं बुढ़ापे एक नित दूजो पूजित होइ॥
ज्यों काँचे बासन लगे चीन्ह मिटै फिरि नाँहिं।
बालन के हित कहत हैं नीति कहानी माँहिं॥

भागीरथी के तीर पाटलिपुत्र नाम एक नगर था। वहाँ गुण-वान तेजनिधान राजा सुदर्शन राज करते थे। इन्होंने एक दिन किसी के मुँह से दो छन्द सुने—

" छूटि जात संसय अमित लखै अगोचर बात।
शास्त्रनैन बिन अन्ध सम जग महँ पुरुष लखात॥
प्रभुताई अविवेक, यौवनवय, संपत्ति सब।
अनरथ को इक एक, कहाँ कुशल जहँ सब रहैं॥ "

इतना सुनते ही राजा को अपने लड़कों की सुध आई, जो शास्त्र की ओर ध्यान न देकर नित बुरी चाल चलते थे और राजा ने सोचा—

"पढ़ो न धर्मिक जो न, सो सुत कानी आँखि सम।
व्यर्थ तासु घर होन, सो केवल दुख देत है॥
होयँ न वरु मरि जायँ, मूरुख होयँ न सुत कबहुँ।
वे इक बार पिरायँ, मूरुख छन छन देत दुख॥

क्योंकि, सो जनमो जाके भये कुल की उन्नति होइ।
याहि जग के आवागमन मरि जनमैं सब कोइ॥

और, गनों जाय सङ्कोच बिन जो नहिं गुनियन माँझ।
तासु मातु जो सुत जन्यो तो कहिए केहि बाँझ?
विद्या औ धन लाभ में करत यज्ञ तप दान।
लह्यो न जस जिन, मातु के सो उच्चार समान॥

और, एक गुनी सुत बहुत हैं सत मूरख सुत नाहिं।
एक चन्द्र नासै तिमिर नहिं तारागन जाहिं॥
कठिन तपस्या जो करी कठिन तीर्थ में जाइ।
तासु पुत्र बस में रहै, धर्मी पंडित होइ॥

यह भी कहा है, धन संपति, नीरोग तन, तिय प्रिय बोलत बैन।
स्वारथ गुन, सुत बस रहय, ए जग के सुखचैन॥
साव कुपूत अनेक, सुखी भयो जग माहिं को।
कुल तारैं सुत एक, जेहि सन जस पावै पिता॥
पिता शत्रु जो ऋन करै, मा जिन परपति कीन।
नारि सुन्दरी शत्रु है, शत्रु पुत्र गुनहीन॥
अनपच भोजन होत बिष, कुपढ़े जन का ज्ञान।
बिष है सभा दरिद्र को, बूढ़हि नारि जुवान॥

हा, हा, सुत, तुम ना पढ़्यो बीतीं इतनी राति।
तेहि से पंडित बीच तुम कीच गाय की भाँति॥

तो मैं अपने लड़कों को कैसे सिखाऊँ पढ़ाऊँ,

खान, सयन, सब कर्म, नर के पशु के एक सम।
नरविशेष एक धर्म, धर्महीन नर पशु सरिस॥

क्योंकि, काम मोक्ष धन धर्म में जाके एक न होइ।
बकरीगरथन सम भयो व्यर्थहि जग नर सोइ॥

यह जो कहा है—

धन विद्या, जीवन, मरन, सकल कर्म जग माँहि।
आवत नर जब गर्भ में ये सब सिरजे जाँहि॥

और होनहार नहिं मिटि सकै महिमाहुँ के प्रसंग।
हरि सोवैं क्यों साँप पर शम्भु रहैं क्यों नंग?

और अनहोनी नहिं ह्वै सकत होनी ही नित होइ।
चिन्ता विषमारक अगद क्यों न पियैं यह लोइ॥

सो किसी आलसी के वचन हैं जिससे काम नहीं हो सकता था,

कबहुँ कि दैव विचारि के तजैं जतन बुध लोग।
तेल सदा तिल में रहैं मिले कि बिन उद्योग॥

आलस छोड़ि के सिंह समान प्रयत्न करै सोइ संपति पावै।
कायर नीच की बात यहै सोइ वस्तु मिलै जेहि भागि दिवावै॥
भागिहि मारि के दैव बिसारि कै यत्न करै तब संपति आवै।
यत्न किये पै जो सिद्ध न होइ तो कौन कहौ कछु दोष लगावै?

एकहि पहिये से कहूँ ज्यों गाड़ी नहिं जाति।
सिद्ध होत नहिं भागि जग बिन पौरुष तेहि भाँति॥

और देखो तो--पूर्व जन्म जो कछु किये, सोइ कहावै भागि।
पौरुष से सब काज करु, भय आलस सब त्यागि॥

लै माटी बासन रचै ज्यों मनभावै कुम्हार।
फल त्यों अपने कर्म कर पावत है संसार॥
गिरो जो छप्पर फारि कै, परो जो आगे आइ।
बिन पौरुष सो क्यों मिलै, दैव न देत उठाइ॥
निरे मनोरथ से कहूँ होत सिद्ध जग काज?
परैं न मुँह में आप मृग जब सोवत मृगराज॥
मात पिता के जतन से पुत्र गुनी हैं जाहिं।
पेटहि सो पढ़ि ज्ञान सब को जनम्यो जग माँहि?

और मात पिता रिपु तासु जिन पुत्र पढ़ायो नाँहि?
सभा न सोहत मूर्ख सुत ज्यों बक हंसन माँहि॥
उपजे ऊँचे वंश में धरै रूप अनुकूल।
विद्याहीन न सोह ज्यों फीके किंशुकफूल॥
मूरख सोहत बुधन महँ पहिरे वस्त्र अमोल।
सब सोभा माटी मिलत निसरत मुँह से बोल॥"

इस भाँति विचार करके राजा ने पंडितों की एक सभा की और कहा, "हमारे लड़के अनपढ़े होने से नित बुरी चाल चलते चलते बिगड़े जाते हैं। आप लोगों में कोई ऐसा भी विद्वान है जो नीतिशास्त्र पढ़ाके इनका मानो दूसरा जन्म करे?

क्योंकि, काँचहु कञ्चन संग तें सोहत ज्यों पुखराज।
मूरख होत प्रवीन त्यों बैठे बिबुधसमाज॥

और नीचन संग बैठे घटै सदा बुद्धि निज तात।
समन संग समही रहत, बड़न संग बढ़ि जात॥"

इतना सुन नीतिशास्त्र का महापण्डित विष्णुशर्मा ब्राह्मण बोला "महाराज! यह राजकुमार बड़े ऊँचे कुल में जन्मे हैं, मैं इन्हें नीतिशास्त्र पढ़ा सकता हूँ; क्योंकि—

कतौं उपाय न एकहू लगै वस्तु जो खोटि।
बगुला नहिं शुक सम पढ़ै किये जतन सत कोटि॥
और, निगुनी सुत क्यों होइहै ऐसे कुल गुनवान।
काँच नहीं उपजै कहूँ मानिकमनि की खान॥
मैं आप के लड़कों को छ महीने में राजनीति का पंडित कर दूँगा"।

राजा ने आदर से कहा।

"फूल साथ कीटहु धरैं निज सिर पुरुष सुजान।
पाइ प्रतिष्ठा बड़न तें पूजो जात पखान॥
और, रहत उदयगिरि निकट सब पावैं विमल प्रकास।
चतुर होत त्यों मूढ़ हू बैठत सज्जन पास॥

दरसत गुन सुभ गुनियन माहीं।
निगुनिन संग दोष बनि जाहीं॥
पियन जोग नित अति सरिवारी॥
मिले समुद्र होत सोइ खारो॥

तो मैं अपने लड़के आपको सौंपता हूँ, आप उन्हें राजनीति सिखाइए" इतना कहकर बड़े आदर के साथ राजा ने अपने लड़के विष्णुशर्मा को सौंप दिए। विष्णुशर्मा राजकुमारों को राजमन्दिर के पिछवाड़े एक अच्छे स्थान में ले गया, और वहाँ सुख से बैठा कर बात चीत करके बोला "राजकुमार, सुनो—

बुद्धिमान नित प्रति करै काव्यशास्त्र की बात।
सोवत कलहत, व्यसन में मूढ़न के दिन जात॥

तो तुम लोगों के जी बहलाने को कौवों और कछुओं की कहानी कहूँगा"। राजकुमारों ने कहा "गुरुजी कहिये"। विष्णुशर्मा बोला "सुनो, पहिले मित्रों के मिलने की कहानी कहूँगा"। राजकुमारों ने कहा "सुनाइए"।

मित्रों का मिलना

विष्णुशर्मा ने कहा—

बिन साधन बिन धन, चतुर, रहत सहित अनुराग।
साधैं अपने काज ज्यों कछप, मूस, मृग, काग॥

गोदावरी के तीर एक बड़ा सेमल का पेड़ था। उस पर देस देस से आकर रात को पंछी बसेरा लेते थे। एक दिन रात बीते जब चन्द्रमा अस्ताचल की चोटी पर पहुँच रहे थे, लघुपतनक नाम का एक कौआ जागा और देखता क्या है कि एक बहेलिया यमराज की नाईं हाथ में जाल लिए आ रहा है। उसको देख कौए ने सोचा "आज सवेरे सवेरे बुरे का मुँह देखा, न जानै क्या होगा"। इतना कह उसी के पीछे घबड़ा कर चला।

देखो, हेतु हजारन शोक के भय की लाखन बात।
नित नित घेरत मूढ़ को पंडित ढिग नहिं जात॥

और, संसार के लोगों को यही करना भी चाहिए।

उठि उठि नित देखत रहिय जग आवत की राह।
मरन सोच अरु रोग में आज होइ है काह?

उस बहेलिए ने भी चावल छींट कर जाल फैला दिया और आप छिप कर बैठ रहा। उसी समय चित्रग्रीव नाम कबूतरों का राजा अपने परिवार समेत आकाश में उड़ा जाता था। उसने चावलों को देखा और जो कबूतर लालच में उतरना चाहते थे उनसे बोला, "भला इस सूने बन में चावल कहाँ से आए? लाओ देखें तो सही। हमको इसमें भलाई नहीं देख पड़ती। हो न हो चावल के लोभ से हमें भी वैसाही होगा जैसे—

कंगन के लालच परो फंसो कीच में जाय।
बूढ़ बाघ तेहि धरि लियो मूढ़ बटोहिहि खाय॥

कबूतरों ने पूँछा, "सो कैसे हुआ था"। चित्रग्रीव बोला "हम एक बार दक्खिन के जंगल में फिर रहे थे। वहाँ हमने देखा कि एक बूढ़ा बाघ एक ताल में नहा कर, हाथ में कुश लिए कहता था—'ए बटोही, ए बटोही, हमारे पास एक सोने का कड़ा है, तुम लिये जाओ'। एक बटोही लालच के बस, पास आया और सोचने लगा "ऐसा अवसर भी बड़े भाग से मिलता है। पर यहाँ तो जानजोखम है, इसीसे अलग ही रहना चाहिये, क्योंकि—

भला होत नहिं लाभ से परो जु जोखम बीच।
अमिय रहै विष में धरो तऊ करै नरमीच॥

परन्तु धन के लिये जितने काम किए जाते हैं सब जोखम ही के होते हैं। कहा भी है—

बिना परे जोखम नहीं, देखैं सुख जग लोग।
जोखम परि उबरै जियत करैं सकल सुख भोग॥

तो अब पूँछूँ"। ऐसा सोच विचार बाघ से बोला, 'कहाँ है, तुम्हारा कड़ा, देखैं तो?' बाघ ने पञ्जा उठा कर दिखा दिया। बटोही बोला 'भला तुम तो हम लोगों को मार कर खाते हो, तुम्हारा विश्वास कैसे किया जाय!' बाघ बोला 'सुनो जी बटोही, जब हम जवान थे तो बड़े पापी थे, हमने बहुत सी गायें मारीं, बहुतेरे ब्राह्मण मारे। इसी पाप से हमारी स्त्री मर गई, लड़के मर गए। अब हमारे कोई आगे पीछे नहीं है। एक दिन एक धार्मिक ने हमको उपदेश दिया कि तुम दान पुण्य किया करो उसके उपदेश से हम नित नहाते और दान पुण्य करते है। और हमारे मुँह में न दाँत हैं, न हाथ में नख, सो निठुराई छोड़ दी और सब पर दया करते हैं। अब भी हमारा विश्वास नहीं हो सकता? कहा भी है—

धीरज, छमा, अलोभ, तप, सत्य, दान, श्रुतिपाठ।
यज्ञ सहित, ये धर्म के गनिए मारग आठ॥
करत लोग दिखाव को कबहुँक पिछले चारि।
औरन के नित रहत हैं साधुन ही अधिकारि॥

लोभ तो हमने इतना छोड़ दिया है कि अपने हाथ का सोने का कड़ा दिये डालते हैं। तो भी बाघ तो मनुष्य को खाते हैं यह कलङ्क कैसे मिट सकता है? क्योंकि—

पीटत रहैं लकीर निज लखि इक एक जहान।
गोघाती ब्राह्मन सरिस धर्म न करैं प्रमान॥

और हमने तो धर्मशास्त्र भी पढ़ा है। सुनो—

देनो सूखहि मेघ ज्यों, जर खेत मैं नीर।
देनो सुफल दरिद्र को सदा, युधिष्ठिर धीर॥
अपने प्रान पियार ज्यों तैसहि सब के प्रान॥
दया करैं निज सरिस गनि सब कहँ साधु सुजान॥

और सुख दुख प्रिय अरु अप्रिय मैं देत उतर अरु दान।
अपने मन सज्जन पुरुष राखैं सदा प्रमान॥

और माटी सम परधन लखैं माता सम पर जोइ।
अपने सम जानैं सबहि पण्डित जानो सोइ॥

और तुम दरिद्र हो इससे तुम्हीं को देना चाहते हैं। कहा भी है—

देहु दरिद्रन धन सदा धनिहि न दीजै दाम।
रोगी को औषधि चहिय, चंगहि तासु न काम॥

और अनउपकारिहि दीजिये देन चहिय जो दान।
देस काल नर जोग लखि सो भाखैं भगवान॥
तो अब इस ताल में नहा कर यह सोने का कड़ा ले लो।'

बटोही को इसकी बात के सुनने से विश्वास हो गया और ताल में नहाने को ज्योंही पैठा, उसके पाँव कीचड़ में फँस गए

और वह निकल न सका। उसको कीचड़ में फँसा देख बाघ बोला 'हा, बड़े कीचड़ में फँसगए; तुम्हें निकाल लें'। बाघ धीरे धीरे बटोही के पास गया। जब बाघ ने उसे पकड़ लिया तब उसने सोचा—'पढ़े शास्त्र कछु बीच न होई।

पढ़े वेद सुधरै नहिं कोई॥
सहज सुभाव छुटै हिय नीठा।
ज्यों गोदूध रहै नित मीठा॥

सो मैंने इस मांसाहारी का विश्वास करके अच्छा नहीं किया। कहा है—नदी नखी और शृङ्गि जो धरैं शस्त्र निज पास।

राजबस औ नारि में कबहुँ न करु विश्वास॥

और, सब के जात स्वभाव हो परखे गुन नहिं और।

सब गुन सों बढ़ि चढ़ि रहै इक सुभाव सिरमौर॥
घूमत हैं सो अकास के बीच अँधेरहि नित्य नसावत है।
तारन में विहरैं निसि में कर कोटि अनेक चलावत है॥
सोऊ ससी विधि बाम भये पै जो राहु के ग्रास में आवत है।
भाल लिखी लिपि को जग में बलवान सों कौन मिटावत है?'

इतना वह सोचता ही था कि उसे बाघ मार के खा गया।

इसी से हम कहते हैं 'कंकन के लालच इत्यादि'। बिना विचारे कोई काम करना न चाहिये। क्योंकि—

पचा अन्न सुत आज्ञाकारी।
सेयो नृप, निज बस जो नारी॥
कियो कहो जो सहित विचारा।
कबहुँ न तिन निज काज बिगारा॥

इनकी बात सुन एक कबूतर बड़े गर्व से बोला, 'ऐसी बात क्यों कहते हो—लोजै बूढ़ सलाह तब परै विपति जब कोइ।

सदा जो करो विचार तो कबहुँ दुर्लभ होइ॥

क्योंकि, संका सबही को लगी जग जो भोजन पान।
　　का कीजै केहि भाँति पुनि राखिय तन में प्रान॥

और यह भी कहा है—

　　क्रोधी, बिन सन्तोष, जो ईर्षा करहिं सकाहिं।
　　रहैं आसरे और के तिनहि न सुख जग माहिं॥'

इतना सुन कर सब कबूतर जाल पर बैठ गए। देखो—

　　जानत शास्त्र अनेक जन पढ़े वेद समुदाय।
　　परे लोभबस दुःख महँ, सुधि बुधि सकल गँवाय॥
　　काम क्रोध अरु मोह को लोभहि गनिये खानि।
　　लोभ न कीजिय, पाप को प्रबल मूल यहि जानि॥

और सब जाल में फँस गए। तब तो जिस के कहने से उतरे थे उसको सब बुरा भला कहने लगे। कहा भी है—

　　अगुआ बनिय न काज में सधे सबै फल लेत।
　　जो पै बिगरो काज तो अगुअहि दूषन देत॥

और भी, क्रोध होत है लोभ से, लोभहि से पुनि काम।
　　मोह, नास, सब लोभ से, लोभ पाप को धाम॥

उन लोगों को बुरा कहते देख, चित्रग्रीव ने कहा "इनका कुछ दोष नहीं।

　　परन होत जब आपदा हितही कारन होय।
　　बछरा माँ की जाँघ में बाँधत है नित लोय॥

और, सोइ मित्र आपति परे करै जु नरउद्धार।
　　सो कि मित्र जो बिपति महँ बनै सिखावनहार?

बिपत पड़े घबड़ाहट कायरपने का लक्षण है। अब धीरज धर के इसका उपाय सोचना चाहिये। क्योंकि—

बाढ़े छमै, बिपति रह धीरा।
सभा चतुर, रन महँ नित बीरा॥
सुयश चाह, विद्या हित चाऊ।
यह सब नित जग बड़नसुभाऊ॥
सम्पति माँहिं हर्ष जेहि नाहीं।
करै विषाद न आपति माँही॥
रहै धीर रन महँ नर जोई।
सो बिरला कोउ जग महँ होई॥

और आलस तन्द्रा रोष, दीर्घसूत्रता, नींद, भय।
तजै सदा ए दोष, जो सम्पति चाहै पुरुष॥

अब यह करो कि सब मिल के जाल ले के उड़ो। क्योंकि—

छोटेहू के मेल से साधि सकिय बड़ काज।
तृननि जोरि रसरी बटन बाँधत हैं गजराज॥
कुल के छोटन संगहूँ तजु न मेल व्यवहार।
चाउर जामि सकै नहीं छाँड़ि देत जब न्यार॥

इतना विचार कर सब पक्षी जाल लेकर उड़ गए। बहेलिया कबूतरों को जाल लिए जाते देख उनके पीछे दौड़ा और उसने सोचा—

उड़े जात मम जाल लै ए पंछी इक साथ।
जो गिरि हैं ए भूमि पै तो लगि हैं मो हाथ॥

जब वह सब बहेलिये की आँखों की ओट हो गये तो चित्र-ग्रीव ने कहा—

'मात पिता अरु मित्र ये तीनहिं हित के नात।
और सबै कोउ काज से नर के हित बनि जात॥

गंडकी नदी के किनारे चित्रबन में हमारा मित्र, मूसों का राजा हिरण्यक रहता है। वह हम लोगों के बन्धन काटैगा।'

इतना विचार के सब हिरण्यक के पास गये । हिरण्यक भी आपद् की डर से सौ मुँह की बिल में रहता था।

होनहार भय त्रास, नीति शास्त्र जानत सकल ।
कीन्ह मूष तहँ बास, बिल में कीन्हें द्वार सत ॥

वह कबूतरों के उतरने से चकराकर चुपचाप अपनी बिल में घुसा बैठा रहा। चित्रग्रीव ने कहा 'भाई हिरण्यक! हम लोगों से क्यों नहीं बोलते?' हिरण्यक ने उनकी बात सुन उसे चट पहिचान लिया और बाहर निकल कर बोला 'हमारे आज बड़े भाग जो हमारे प्यारे मित्र चित्रग्रीव आये हुए हैं।

बात करैं जो मित्र सँग रहैं मित्र सँग जोइ।
मिलै बिछुड़ि जो मित्र सन तेहि सम धन्य न कोइ ॥

फिर कबूतरों को जाल में फँसा देखकर घबराहट से एक क्षण रुक कर बोला 'मित्र! यह क्या है?' चित्रग्रीव ने कहा, 'भाई, हम लोगों के पूर्व जन्म के पापों का फल है।

जब जेहि सँग जेतो लिखो कर्म सुभासुभ लोग ।
तब तेहि सँग तेतो लहैं विधि बस सो फल भोग ॥
रोग, सोक, बन्धन, व्यसन, सकल दुःख परिताप ।
ए सब फल सो रूख के जाहि लगाये पाप' ॥

इतना सुनते ही हिरण्यक चित्रग्रीव का बन्धन काटने को दौड़ा। तब चित्रग्रीव बोला, 'नहीं, भाई, नहीं। यह सब हमारे आश्रित हैं, पहिले इनके बन्धन काटो।' हिरण्यक कहने लगा 'मेरे इतना बल कहाँ, मेरे दाँत कोमल हैं सबके बन्धन कैसे काट सकूँगा। जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते, मैं तुम्हारा बन्धन काटता हूँ। उसके पीछे जहाँ तक हो सकेगा इनके भी बन्धन काटूँगा।' चित्रग्रीव ने कहा 'ठीक है; तो भी जहाँ तक हो सके

पहिले इन्हों के बन्धन काटो।' हिरण्यक ने कहा 'यह कहाँ की नीति है कि अपने को छोड़ आश्रितों की रक्षा करै? क्योंकि—

धन बचाय दुख हेत धरु, धनहु छोड़ि निज नारि।
निजहि बचाउ विपत्ति में धन और नारि बिसारि॥

और धर्म अर्थ अरु काम के एक प्रानहीं हेत।
तेहि मारत नर सब हनै, राखत सब रखिलेत॥'

चित्रग्रीव बोला, "सब सत्य है पर हम अपने आश्रितों का दुख देख नहीं सकते, इसीसे कहते हैं। क्योंकि—

धन जीवन सब तजत है सुजन पराये अर्थ।
नसैं अवसि जो, जाय सब तो केहि कारन व्यर्थ?

इसके सिवाय एक और भी बड़ी भारी बात है।

बल संपति औ जाति में ये सब मोहिं समान।
मेरी प्रभुता कब सुफल ह्वैहैं, मित्र सुजान?

और, बिन कछु धन के लोभ से सदा रहैं मम पास।
मो प्रानहु लन, मित्र, करु इनकर परम सुपास॥

क्योंकि, हाड़ मास मल मूत सों रची बिनासी देह।
तेहि पर हठ तजि राखु जस जो कछु तोहि सनेह॥

और देखो तो, छनिक मलभरी देह से नित्य विमल जसलाह।
यहि समान त्रयलोक में गनिय लाह कहु काह॥

क्योंकि, गुन शरीर अन्तर बड़ो देखु मित्र मतिधीर।
कल्पअन्त लौं गुन रहै छन महँ नसै सरीर॥'

इतना सुन, हिरण्यक मारे आनन्द के गदगद होकर बोला "वाह भाई, वाह! आश्रितों पर इतनी प्रीति के रखने से तुम तीनों लोक के स्वामी होने के जोग हो।" ऐसा कहकर उसने सब कबूतरों के बन्धन काट डाले और सब का आदर भाव करके बोला "भाई चित्रग्रीव! जो कभी दैववश फिर कभी जाल

में फँस जाना तो दोष के विचार से अपने प्राण ऐसे वैसे न समझना, क्योंकि—

सकै देखि सौ कोस ते जो पंछी नित मांस।
समय परै देखै नहीं सो सन्मुख निज पास॥

सूर्य चन्द्र ग्रह बस दुख पावत।
गज भुजङ्ग बन्धन महँ आवत॥
देखि दरिद्र रहत विद्वाना।
विधि बलवान करौ अनुमाना॥

और घूमत हैं नभ बीच इकन्त बिहंग सोऊ दुख पावत हैं।
सिन्धु अगाध रहैं मछरी तिनको नर जाल फँसावत हैं॥
चाह भली जग कौन कहौ भल ठाँवहु काहि बतावत हैं।
काल चहै दुख देन तो भूप सुदूरहु से धरि लावत हैं॥

ऐसे समझा बुझा, पहुनाई कर, गले लगा, उसको बिदा किया। चित्रग्रीव भी अपने परिवार के साथ जिधर जी चाहा चला गया।

हित बनाइये जगत में जहाँ मिलैं सब काल।
काटे मूसा मीत ज्यों चित्रग्रीव के जाल॥

और हिरण्यक भी अपने बिल में चला गया। लघुपतनक कौआ यह सब बातें देखकर अचरज से बोला "वाह हिरण्यक, तुम बड़े योग्य हो। हम भी तुम्हारे साथ मिताई करना चाहते हैं। तुम हमें भी अपना मित्र बनालो तो बड़ी कृपा हो"। यह सुन हिरण्यक बिल के भीतर से बोला "तुम कौन हो?" कौआ बोला "मैं लघुपतनक नाम कौआ हूँ"। हिरण्यक हँस के बोला "तुम्हारे साथ मिताई कैसे हो सकती है? क्योंकि,

होय मेल जेहि संग करिय ताहि मित्र यह नीति।
हम भख भच्छनहार तुम, कैसे ह्वै है प्रीति?

और भखनहार भक्ष प्रीति में सदा बिपत्ति निदान ।
स्यार बँधायो, काग पुनि राखे मृग के प्रान ॥

कौआ बोला " कैसे ? " हिरण्यक ने कहा, " मगध देश में चम्पकवती नाम एक बन है। वहाँ बहुत दिनों से एक हिरन और एक कौआ बड़े स्नेह से रहते थे। एक दिन हिरन मोटा टाँठा इधर उधर टहल रहा था, उसे एक सियार ने देखा। उसे देख सियार ने विचारा अरे इसका सुन्दर माँस कैसे खाँयँ ? अच्छा चलो पहिले मेल करके विश्वास तो करावैं ' । ऐसा सोच उसके पास जाकर बोला ' मित्र अच्छे हो ? हिरन ने पूँछा; तुम कौन हो ? सियार बोला मैं क्षुद्रबुद्धि नाम सियार हूँ । इस बन में बिना किसी मित्र के अकेला मरे की नाईं रहता हूँ । अब तुमको मित्र पाके फिर से मेरा जन्म होगा। अब तो मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा ' । मृग ने कहा, बहुत अच्छा ' । जब सूर्य-नारायण अस्त होगये तो दोनों हिरन के कुंज में गए। वहाँ चम्पा की डार पर हिरन का पुराना मित्र सुबुद्धि नाम कौआ रहता था। दोनों को देख, कौआ बोला, यह कौन हैं ? " हिरन ने कहा, ' यह एक सियार है, हम लोग से मिताई करने आया है। कौए ने कहा ' भाई ' अकस्मात् आनेवाले के साथ मिताई नहीं की जाती। यह काम तुमने अच्छा नहीं किया। कहा भी है—

जासु न जानिय शील कुल ताहि न दीजे बास ।
मंजारी के दोष से भयो गिद्ध कर नास ॥

दोनों ने पूँछा, कैसे ? ' कौआ बोला ' भागीरथी के तीर गृध्रकूट नाम पर्वत पर एक बड़ा भारी पाकड़ का पेड़ है। उसके कोल में बुढ़ापे से अन्धा, बिना पञ्जों का जरद्गव नाम गिद्ध रहता था। उसकी दशा देख और पंछी जो उस पेड़ पर रहते थे, दया से उसे भी अपने चारे में से थोड़ा थोड़ा दिया करते थे।

इसीसे वह जीता था, और उनके बच्चों की रखवाली किया करता था। एक दिन बड़कन्ना नाम एक बिलार बच्चों को खाने आया। उसे देख बच्चों ने मारे डर के हल्ला किया, सो सुन जरद्गव बोला, 'कौन आता है?' बड़कन्ना गिद्ध को देख डर से बोला 'हाय' मैं मरा! और,

डर सों तब हीं लौं डरिय जब लगि सौंह न सोइ।
सौंहैं डरकारन निरखि करिय उचित जो होइ॥

अब तो इसके पास से भाग भी नहीं सकता। जो होना होगा सो हो। चलूँ, इसके पास चलूँ'। इतना सोच आगे बढ़ कर बोला, 'आपको प्रणाम करता हूँ।' गिद्ध ने कहा, 'तू कौन?' वह बोला, 'मैं एक बिलार हूँ'। गिद्ध बोला, 'भाग, नहीं तो मारही डालूँगा,'। बिलार ने कहा, 'बात तो सुनिये; तब फिर मारने के जोग हूँगा तो मारियेगा। क्योंकि,

जातिहि से काहुहि कहूँ मारत पूजत लोग।
चलन जानि तिन हीन जन मारन पूजन जोग॥

गिद्ध बोला, 'कह, कौन काम है?' बिलार ने कहा, 'मैं यहाँ गङ्गाजी के तीर पर नित्य नहाता हूँ। मांस नहीं खाता और ब्रह्मचर्य में रह कर चान्द्रायणव्रत करता हूँ। जो पंछी मेरा विश्वास करते हैं वह सदा मेरे पास आकर आपकी बड़ाई किया करते हैं। आप विद्या और वय दोनों में बड़े हैं, इसीसे आपसे ज्ञान और धर्म सुनने आया हूँ। आप ऐसे धर्मात्मा निकले कि मैं आपका पाहुना, सो मुझी को मारने को तैयार हैं! गृहस्थ का यही धर्म लिखा है?

बैरिहु कर आदर करिय आये निज घर माँह।
काटनहारे सों नहीं खैंचत तरु निज छाँह॥

और जो कुछ खानेपीने का न हो तो मीठी बातों ही से पहुनाई करैं कहा हैं,

बैठन कहँ तृन, भूमि, जल, चौथी मीठी बात।
गये भलन के गेह नहिं ये सब माँगे जात ॥

और आवै अपने गेह में बाल कि बूढ़ जुआन।
पूजा ताकी कीजिये पाहुन गुरू समान ॥

और निगुनीहूँ पर साधु की दया बराबर होति।
खैंचत नहिं चंडाल के घर सन ससि निज जोति ॥

और लौटत जाके गेह के पाहुन होय निरास।
ताहि पाप निज देय सो करै सुकृत कर नास ॥

गिद्ध बोला 'बिलारों को माँस की चाट होती है और यहाँ चिड़ियों के बच्चे रहते हैं इसी से हमने कहा'। बिलार ने इतना सुनते ही धरती छू के कान पकड़े और बोला, 'मैंने धर्म शास्त्र सुन कर बैराग लिया और कड़ा चान्द्रायण व्रत उठाया है। और धर्मशास्त्रों में और और बातों पर मतभेद है, तौ भी

करैं जीवहिंसा न जो, सहैं सबन की बात।
सब के आश्रय जो रहैं, ते नर स्वर्गहिं जात ॥

और, धर्म सरिस नहिं हित कोऊ, मरेहु संग जो जात।
यहि शरीर के साथ ही औरै सबै नसात ॥

क्योंकि, खाय जो जेहि कर माँस उन दोहुन मरन निदान ॥
इक कर छनिक सवाद है जात एक के प्रान ॥

और सुनो, भरै खाय कै साग जो बन में उपजै आप।
जरे पेट के हेत सो करै कौन बड़ पाप ?

ऐसे बिश्वास दिला कर वह बिलार पेड़ के कोल में बैठा और दिन दिन बच्चों को पकड़ कोल में लाकर खाता था।

अब जिनके बच्चे उसने खाये थे वे सब दुखी हो रोते पीटते ढूँढ़ने ढांढ़ने लगे। बिलार ने जब यह जाना तो कोल से निकल कर भाग गया। पक्षियों ने भी इधर उधर ढूँढ़ते ढूँढ़ते कोल में बच्चों की हड्डियाँ जो पाईं तो यही निश्चय किया कि इसी गिद्ध ने बच्चे खाए हैं और सबने मिल कर उसको मार डाला। इसी से मैंने कहा "जासु न इत्यादि"। इतना सुनते ही सियार लाल लाल आँखें कर बोला 'जब तुम्हारी हिरन की पहिली भेंट हुई थी तो तुम भी ऐसे ही थे। तुम्हारे साथ कैसे आज तक प्रीति दिन दिन बढ़ती जाती है?

जहँ पंडित नहिं मानिए तहाँ मन्दबुधि लोइ।
रूख नहीं जहँ, रेंड़ तहँ रूख गनैं सब कोइ॥
यह आपन यह पर सदा सोचत चित्त विचार।
मानैं जगहि कुटुम्ब सों जिनके चरित उदार॥

जैसे हिरन हमारे मित्र वैसेही तुम भी। हिरन ने कहा, 'इस बकवाद से क्या मिलेगा, सब कोई इकट्ठा चैन से बात चीत करें, क्योंकि. नहिं काहू को रिपु कोऊ नहिं काहू को मीत।
काम परे सब देखिए जगत वैर औ प्रीत॥'

कौआ बोला 'अच्छा'. सबेरे सब इधर उधर चले गए। एक दिन सियार ने चुपके से कहा 'भाई इसी बन की एक ओर अनाज से भरा पुरा एक खेत है, चलो तुम्हें दिखा दें. मृग ने जो खेत देख लिया तो नित वहीं जाकर अनाज खाया करता था। कई दिन पीछे किसान ने उसे देख, जाल फैला दिया। फिर जो हिरन आया तो जाल में फँस गया और सोचा, 'इस काल की फाँसी ऐसे जाल से मुझे मित्र के सिवा और कौन छुड़ा सकता है?, इतने ही में सियार भी वहीं पहुँचा और हिरन को देख सोचने लगा 'हमारा छल सुफल हो

गया; अब मनोरथ भी पूरा होगा, क्योंकि जब यह काटा जायगा तो इसकी बोटियाँ हमें खाने को मिलेंगी।' हिरन उसे देख सुख से फूल गया और बोला 'भाई, हमारे बन्धन काट दो, हमें छुड़ाओ, अब देर न करो। क्योंकि,

रिनसाँचा, रनसूर, अरु आपति परखिय प्रीति।
नारि गये धन, दुःख में नातन की परतीति॥

और दुःख सुख राजदुआर में राजभंग जब होइ।
महँगी और मसान जो साथ देत, हित सोइ॥

स्यार ने जाल को बार बार देख कर विचारा कि हिरन तो गाढ़े बन्धन बँधा और बोला 'भाई' जाल ताँत का बना है, इस में एतवार के दिन दाँत कैसे लगाऊँ। तुम अपने जी में और न कुछ समझना; सबेरे जो कहोगे सोई करूँगा।' जब साँझ हो गई और मृग न आया तो कौआ भी उसे ढूँढ़ता हुआ वहीं पहुँचा और हिरन को उस दशा में देख बोला '' भाई, यह क्या है?' हिरन ने कहा ' भाई. हित की बात न मानने का फल। कहा भी है—

निज हितचाहक मीत की सुनै नहीं जो बात।
सो वैरिहि सुख देत है बिपति तासु नगिचात॥

कौए ने कहा। ' वह सियार कहाँ है '। हिरन बोला, ' मेरे माँस के लालच में यहीं कहीं होगा '। कौए ने कहा, ' हमने तो तुमसे पहिले ही कहा था।

नहिं दोषी मैं, खल कहै तो न करिय बिश्वास।
रहै सदा खललोग तें गुनियन हूँ मन त्रास॥
सौंहे बोलत प्रिय बचन पीछे चाहत हानि।
छाँड़िय ऐसे मित्र को पयमुख विषघट जानि॥'

तब कौआ लम्बी साँस ले के बोला, ' अरे दग़ाबाज़ पापी! तू ने क्या किया?

अर्थ हेत जन आस जनाई।
मोहत मीठी बोल सुनाई॥
जन वस करै व्यर्थ उपचारन।
धोखा देहिं हाय केहि कारन॥

और, भला करै जिससे सदा राखै नहिं कुछ बीच।
तेहि जो वंचत सो जियै कैसे जग नर नीच?
प्रीति मेल जनि कीजिये कबहुँक दुर्जन साथ।
कोइला गरम दहै, बुझे कारिख लावै हाथ॥

और पापी तो ऐसा ही करते हैं।

चरन परत पीछे काटत चलि।
कहत कान महँ बनो सुहित छलि॥
छिद्र देखि भीतर पग धरई।
खल के चरित भला सब करई॥

और, दुर्जन बोलत प्रिय बचन तऊँ ताहि जनि मानु।
मधु लगाय कछु जीभ में पेट धरत विष जानु॥

सबेरे किसान को लाठी लेकर उसी ठाँव आते देख कौए ने कहा, 'भाई हिरन, तुम अपना पेट फुला हाथ पैर ढीले कर मरे से बन जाओ। जब हम चिल्लायँ तो तुम तुरन्त उठ के भाग जाना।' कौए की बात पर हिरन वैसा ही बन गया। किसान हिरन को मरा जान हँस के बोला 'अरे! यह तो आपही मरा है!' इतना कह हिरन को छुड़ा जाल बटोरने लगा। जब किसान कुछ दूर चला गया तो कौआ चिल्लाया और हिरन झट पट उठ के भाग गया। किसान ने लाठी चलाई, वह सियार को लगी और वह मर गया। कहा भी है—

तीन वर्ष त्रय मास अरु तीनहि दिन में लोग।
यही लोक में लहत हैं पाप पुण्य फल भोग।

इसी से हम कहते हैं कि "भखनहार इत्यादि" कौआ बोला—

"तुम्हरे खायहु से नहीं भरि है पेट हमार।
चित्रग्रीव सम तव जियत रहि हौं यहि संसार॥
और पशु पंछिहु विसमत लखै करत न नेकु दुराव।
संतन चित निवरै नहीं कबहुँक शील सुभाव॥
क्योंकि, कोप दियेहु बिगरै नहीं कबहुँ साधु मनधीर।
गरम घाम की आँच से होत न सागर नीर॥

हिरण्यक बोला "तुम चंचल हो। चंचल के साथ मिताई नहीं की जाती। कहा भी है—

"कौआ कायर नीच जन भैंस भेड़ मंजार।
बिसमे ए सिर पर चढ़ैं बिससैं इन्हैं गँवार॥

और सब से बढ़ के यह है कि तुम हमारी जाति के वैरी हो।

क्योंकि, वैरिन संग मिलिए, नहीं, पायहु संधि गँभीर।
सदा बुझावत आगि को, कैसहु ताइय नीर॥
दुर्जन संग न कीजिए जो पै पंडित होइ।
राखै साँप अमोल मनि कै काटत नहिं सोइ?
अनहोनी नहिं ह्वै सकत होनी ही नित होत।
गाड़ी नहिं जल में चलै थल में चलै न पोत॥
और वैरी बिगरी नारि में जो करि हैं विश्वास॥
बड़ेहु अर्थ के लाभ से, होत तासु नित नास॥"

लघुपतनक बोला "मैंने सब सुना, पर मैं ने अपने मन में पक्का कर लिया है कि तुम्हारे साथ मिताई करूँगा। नहीं तो तुम्हारे द्वार पर अन्न जल न करके मर जाऊँगा। कहा है—

माटी घट ज्यों बेगि खल फुटैं जुरैं फिरि नाहिं।
हुनघट लौं न फुटैं सुजन, फुटे सहज मिलि जाँहिं॥

और, गले मिलैं सब घ्वान, खग मृग मिलैं निमित्त से।
संत लखे मिलि जात, मूरुख डर से लोभ से॥

और, नारियर फल सम लखि परैं सज्जन पुरुष सुजान।
बाहर हो कोमल रहैं दुर्जन बैर समान॥

इसी से भलों की संगति लोग चाहते हैं। क्योंकि—

घटेहु नेह गुन सुजन के उपजत नाहिं बिकार।
नाल दंड के टुटेहूँ बाँधि सकत हैं तार॥

और, दुख सुख रहब समान, दया भक्ति औ सूरता।
काम परे धनदान, गुन ए साँचे मीत के॥

इन गुनों से भरा हुआ तुम सा मित्र कहाँ मिलेगा?

इतनी बात सुन हिरण्यक बाहर निकल कर बोला "आपकी अमृत ऐसी बातों ने मुझे मोह लिया। कहा भी है—

घाम के व्याकुल होत नहीं हैं सुखी तिमि सीतल नीर नहाई।
मोती की माल सो पावैं आनन्द न चन्दन को अँग अंग लगाई।
प्रीति सों सज्जन के प्रिय बैन सदा चित को जिमि लेत लुभाई।
भागि उदय जिनको तिनके मन खींचत के हित मन्त्र की नाईं॥

और जुआ, झूठ, चंचलपना, कहत भेद की बात।
क्रोध, निठुरता, माँगनो, दोष मीत के सात॥

इन में एक दोष तुम में नहीं देख पड़ता। क्योंकि—

बात करन परखिय सदा चतुराई अरु साँच।
प्रगट देखि के कीजिये और गुनन की जाँच॥

और जासु बिमल चित तासु नित प्रीति और हो ग्लानि।
जिनके मन सठता बसी औरै तिन की बानि॥
दुष्टन के मन आन है बचन कर्म कछु आन।
मन में बच में कर्म में सज्जन रहैं समान॥

तो जो आप चाहते हैं सोई होगा।" इतना कहकर हिरण्यक ने मिताई कर खाने पीने में उसका आदर भाव किया और अपनी बिल में घुस गया। कौआ भी अपने बसेरे को गया। उस दिन से दोनों एक दूसरे को खिलाते पिलाते दुख छोड़ सुख से बात चीत करते थे। ऐसे ही कुछ दिन बीत गए। एक दिन कौआ हिरण्यक से बोला "भाई, यहाँ कौए का खाना बड़े दुख से मिलता है इस जगह को छोड़ कहीं, और जाना चाहता हूँ। हिरण्यक बोला—

"ठाँवँ तजे सोहैं नहीं दाँत पुरुष नहँ केस।
अस विचारि छोड़ें नहीं बुद्धिमान निज देस॥"

कौआ बोला "भाई, यह तो कायरपने का लच्छन है। क्योंकि—

ठाँवँ छोड़ि निज जात, गज नाहर उत्तम पुरुष।
ठाँवँहि परे बिलात, कायर नर कौवा हरिन॥

और, मानो सुवीर का देश है कौन, बिदेश न कोउ सो पावत है।
जाइ जहाँ सोइ बाहु के जोर से आपन देश बनावत है।
संग लिये नहँ दाँत हथ्यार जहाँ सोइ पूँछ हिलावत है।
मारि नहाँ गज ताही के रक्त सों नाहर प्यास बुझावत है॥

हिरण्यक बोला "भाई, कहाँ जाओगे? कहा भी है—

औरन के सिखवन समय सबही पंडित होइ।
आप धर्म मारग चलत जन बिरला जग कोइ॥"

कौआ बोला, "भाई, एक बहुत अच्छी जगह विचार रक्खी है। वहीं तुम्हें भी ले चलेंगे" हिरण्यक बोला, "कहाँ?" कौए ने कहा "दंडक वन में कर्पूरगौर नाम ताल है। उसमें हमारा पुराना मित्र मन्थर नाम बड़ा धर्मात्मा कछुआ रहता है। कहा है—

एक पाँवँ आगे करै एक धरै विद्वान।
गाँवँ छोड़ि देखे बिना जात नहीं घर आन॥

वह हमें बहुत सी मछली खाने को देगा"। हिरण्यक ने कहा "तो हम यहाँ रहके क्या करें। क्योंकि—

जहँ न मित्रसम्मान नहिं, जहँ न वृत्ति कछु होय।
जहँ कछु विद्यालाभ नहिं, छाँड़ु मित्र पुर सोइ॥

और, नदी, वेदपाठी, पुरुष, धनी, सुवैद्य, नरेस।
ये पाँचों जहँ रहत नहिं वसु न मित्र तेहि देस॥

और शील, चाल पुनि लोक की लाज, दान की बानि।
ये पाँचों नहिं होयँ जहँ तहाँ रहे बड़ि हानि॥

और तहाँ मित्र बसिये नहीं जहाँ होयँ नहिं चारि।
साहु, वैद्य, पंडित पुरुष, मधुर सुहावन बारि॥

तो हमें भी वहीं ले चलो।" कौआ बोला, अच्छा। तब कौआ अपने मित्र के साथ सुख से बात चीत करता हुआ ताल के किनारे गया। मन्थर ने लघुपतनक को दूरही से आता देख, उठ कर उसकी आवभगत की और मूस का भी आदर भाव किया। क्योंकि—

वर्णन को बाम्हन गुरू, बाम्हन गुरू कृसानु।
नारिन को इक पति गुरू, पाहुन जगगुरु मानु॥

कौआ बोला, "भाई, मन्थर इनका आदर बहुत करना चाहिये बड़े पुण्यात्मा, दया के सिन्धु, हिरण्यक नाम मूसों के राजा हैं। इनकी बड़ाई शेषनाग दो हज़ार जीभों से करें तो हो सकती है"। इतना कह उसने चित्रग्रीव का सारा व्योरा कह सुनाया। तब मन्थर ने हिरण्यक का आदर करके पूँछा "भाई, तुम सुनसान बन में कैसे आये? कहो तो"। हिरण्यक बोला सुनिये, चम्पकपुरी में संन्यासियों की एक छावनी है। वहाँ चूड़ाकर्ण नाम एक संन्यासी रहता है। वह खाने से जो बचता था उसे तूबे में रख खूँटी में टाँग कर सोया

करता था। मैं नित खूँटी पर चढ़ कर उसे खा लेता था। एक दिन उसका प्यारा मित्र वीणाकर्ण नाम संन्यासी आया। उसके साथ बैठ के चूड़ाकर्ण बातें करने लगा और कभी कभी मुझे डराने को एक टूटे बाँस से खट खट किया करता था। वीणाकर्ण यह देख बोला, 'भाई', क्या है ? तुम हमारी बात ध्यान से नहीं सुनते ? चित कहाँ लगा है ? क्योंकि—

मुख प्रसन्न, सुचि डीठि, मन लगाय बातन सुनब ।
नेह बोल पुनि मीठि, ये लच्छन अनुराग के ॥
अवगुन करै बखान, बात न सुनै लगाय मन ॥
देय न करै न मान, तो विरक्त जन जानिये ॥'

चुड़ाकर्ण बोला, "भाई हम तो ध्यान से सुनते हैं। पर देखो यह पापी मूस तूँबे में से अन्न खा जाया करता है'। वीणाकर्ण खूँटी देख कर बोला 'भला यह दुबला मूस इतनो ऊँचो खूँटी पर कैसे चढ़ता है। इस मूस के इतने बल का भी कोई कारण ही होगा। सो धन ही इसका कारण जान पड़ता है। क्योंकि—

जाके धन सोइ जगत में नित बलवान लखात ।
धन ही की प्रभुता सबै राजन महँ विख्यात ॥

इस पर उसने कुदाली ले मेरी बिल खोद डाली और जो दाना मैंने बहुत दिनों से बटोर कर रक्खा था सब ले लिया। फिर तो मैं दुबला हो चला शरीर में बल तेज कुछ न रह गया। और अहार पाना भी कठिन हो गया। एक दिन डरता हुआ धीरे धीरे जाता था। तब चूड़ाकर्ण ने मुझे देखकर कहा,

" धनही से पंडित सबै धनही से बलवान ।
बिन धन पापी मूस कर गयो सकल अभिमान ॥
क्योंकि, बुद्धि हीन नर के रहै जब नहिं धन कछु पास ।
ताके ग्रीषमसरि सरिस होत काज सब नास ॥

और, धनवारे के नात, धनवारे के मित्र सब।
धनी गुनी बन जात, धनवारो हा पुरुष इक॥
और, पुत्र हीन घर सून है मित्र हीन जग सून।
मूरख की दिशि सून है दारिद् सब से ऊन॥
और, मोहि दारिद् अरु मरन में मरिबो भलो लखाय।
मरन थोरहो दुःख है दारिद्र सहो न जाय॥
और, सोइ समर्थ इन्द्रिय सोइ नामा।
बचन बुद्धि सुमुकन सब कामा॥
बिन सम्पति गरमा नर सोइ।
बाहा हीन अचरज यह सोई॥"

मैंने यह सब सुन विचार किया कि अब यहाँ मेरा रहना ठीक नहीं और यह बात किसी से कहनी भी न चाहिए। क्योंकि-

अपने घर के दुश्चरित चिन्ता औ धननास।
धोखा और अपमान नहिं पंडित करत प्रकास॥

और गेह, दोष, तप, दान, मंत्र, दवाई, तियरमन।
धन, बय, अरु अपमान, इन्हें छिपाइय जतन करि॥

कहा भी है, व्यर्थ किये पौरुष सकल भयो दैव जो वाम॥
बन तजि मानी दरिद्र के और कहाँ जग ठाम?

और मानिन कहँ मरि जाँय बरु दरिद्र न होन सुहाय।
कबहुँ ठंढ ह्वै है नहीं, पावक बरु बुझि जाय॥

क्योंकि, मानिन की दुइ चाल, फूलन के गुच्छे सरिस।
चढ़ैं कि सब के भाल, बन में कै बिखरे फिरैं॥

और यहीं रहें और भीख माँग के जियें सो भी बुरा। क्योंकि—

ह्वै दरिद्र जन आगि महँ करै हीन बरु प्रान।
परै न याचन को कबहुँ कृपण नीच धनवान॥

दारिद में उपजै मन लाज औ तेज को लाज दुरावत है।
तेज गये अपमान लहै अपमान लहे दुख पावत है।
दुःख भये उपजै मन सोच औ बुद्धि हि सोच नसावत है।
बुद्धि नसे नसि जात है दारिद आपदमूल कहावत है॥

क्योंकि, बरु रहिये नित मौन, झूठ पै वचन न भाखिय।
बरु होइय बलहीन, और की नारि न राखिय॥
बरु तजिये निज प्रान, करिय जनि कबहुँ चवाऊ।
बरु माँगिय नित भीख, बनिय जनि परधनखाऊ॥
बरु सूनो गोशाल, बरध मरकहा न होई।
बरु वेस्या निज नारि, न पै फिरव्याही जोई॥
बरु बन करिये बास, न जहँ अन्यायी राजा।
बरु छूटैं निज प्रान, न संग महँ अधम समाजा॥

और रूप बुढ़ापा, नन तरनि, पाप राम गुनगान।
गुन सब माँगन हरत है, सेवा सारो मान॥

ऐसे सोच यह जी में भी न आया कि पराये आसरे होकर रहूँ। सो भी मैं ने देखा कि मौतही का दूसरा द्वार है क्योंकि—

बहु दिन रहै बिदेस, पराश्रित भोजन करै।
सदा शरीर कलेस, रहै और के गेह में॥
जीवन मरन समान, ऐसे जन कर जगत में।
निसरि जायँ जब प्रान, तबहीं ये कछु सुख लहैं॥

इस पर मैं फिर संन्यासी का अन्न चुराने पर उतारू हुआ। कहा भी है, चलन बुद्धि नित लोभ से तृषा लोभ से होइ।

तृष्णा सन दुख लहत हैं दोऊ लोक महँ लोइ॥

इस पर वीणाकर्ण ने मुझे फटे बाँस से मारा तो मैंने सोचा—

धनलालच व्याकुल रहै, इन्द्रियबस घबराय।
जाके मन सन्तोष नहिं ता कहँ दुख समुदाय॥

और, जाके मन सन्तोष है, सो नित पूरनकाम।
पनही पहिरे पाँव हित भूमि मनो सब चाम ॥
और, अमिय सरिस सन्तोष रस छके जु मिलै अनन्द।
इत उत धावत क्यों लहै सो लोभी मतिमन्द ॥
क्योंकि, सोई पढ़ा सोई गुना सोई काज सब कीन्ह।
गहि सन्तोष अलभ्य जिन पीठ आस दिसि दीन्ह ॥
और, स्वामिद्वार सेयो नहीं, लख्यो विरह जिन नाहिं।
कह्यो न पातक बात जिन, सोई धन्य जग माहिं ॥
क्योंकि, नहिं सो जोजन दूर तेहि बहै जो तृष्णाधार।
सन्तोषी धन मिलेहु कर करत न कछु उपचार ॥
तो वह काम ही क्यों न समझ लिया जाय जो अवस्था के उचित है।

कौन धर्म? जानब परपीरा।
का सुख? रोगविहीन शरीरा ॥
का सनेह? सतभाव उदारा।
का चतुराई? विवेक विचारा ॥

और नहिं विवेक सम चतुराई विपति परै जब कोइ।
बिन विवेक जो करत तेहि सुलभ विपति नित होइ ॥
और त्यागहु कुल हित हेत एक, गाँव हेत परिवार।
देस हेत तजु गाँव अरु अपने हित संसार ॥

जल बिहीन बहु कंटक जाला।
घास सेज पहिरन हित छाला ॥
रहै बाघ नित जहँ भल सोइ वन।
पै न बन्धु बीच धन बिनु जीवन ॥

ऐसे सोच में सूने बन को चला आया, सो यहाँ बड़े भाग से इनसे मिताई हो गई। अब और पुण्य जो उदय हुए तो आप की भेंट हो गई; क्योंकि—

मीठे फल दोई लसैं विषतरु से संसार।
सज्जन को संगति मधुर, कवितासुरसविचार॥
सतसंगति, हरि भक्ति औ गंगाजल अस्नान।
यहि असार संसार में तीनहि सार प्रमान॥"

मन्थर बोला—

पाँव की धूरि सी संपति है, झिरने की है बाढ़ समान जवानी।
पानी की बूँद से चंचल मानुष, फेन सी है सब की जिन्दगानी।
धर्म करै दृढ़ ह्वै यदि स्वर्ग के द्वार के खोलन को विधि मानी।
बूढ़ भये पछिताय के शोकहुतासन में जरि है सोइ प्रानी॥

तुमने बहुत धन बटोरा इसमें दोष है। सुनिये—

धन बटोरि सिरजा चहो तो करि दे तेहि दान।
रुके सरत बाढ़ै बहे पुखरेनीर समान॥

और, गाड़न हित धन सूम जो खोदत गहिरो खात।
सो धन धरनि समान हित राह बनावत जात॥

क्योंकि, धनहि बटोरन चहत जो सहि सहि दुख दिन राति।
बोझ उठावत और हित सो नर पशु की भाँति॥

कहा भी है, बिना दान अरु भोग के धनी होत जो कोइ।
परे खान में मनिन से धनी बनै सब लोइ॥
बिना दान औ भोग के जाके बीतत काल।
साँस लेत सो जियत नहिं ज्यों लोहार की खाल॥

वृथा सो धन जेहि देइ न खाई।
वृथा सो बल जेहि रिपु न डेराई॥
वृथा आत्म इन्द्रिय बिन मारे।
वृथा ज्ञान बिन धर्म सम्हारे॥

और, जो न करै धन भोग तो सूम दरिद इक खानि।
एतो नातो सूम को मरत, होत धनहानि॥

और, अपने भाई बन्धु के देव न बाम्हन हेत।
जौं नहीं धन सूम को चोर, आगि, नृप लेत॥

और, धन गति तीन प्रमान, दान भोगिबो बिनसिबो।
भोगैं करै न दान, तो तीसरि गति होइ है॥

कहा भी है, बिना गर्व के ज्ञान, दान मान आदर सहित।
क्षमा करत बलवान, दान सहित धन, सुलभ नहिं॥
धन संचय नित कीजिए अति सर्वत्र बचाय।
बिनसा मूढ़ सियार इक अति संचय मन लाय॥

हिरण्यक बोला कैसे? "मंथर ने कहा कल्याण कटक में भैरव नाम बहेलिया रहता था। वह एक दिन माँस के लोभ में धनुष लेकर विंध्याचल के जंगल में चला गया। वहाँ उसने एक हिरन मारा। हिरन को बाँध कर ले चला तो उस ने डरवाने रूप का जंगली सुअर देखा। मृग को तो उस ने रख दिया और एक बान से सुअर को मारडाला। बान लगते समय सुअर जो ग़ुर्रा कर झपटा तो बहेलिए के कुठाँव चीर कर निकल गया और बहेलिया भी गिरा। इन दोनों के पाँव तले कुचल कर एक साँप भी मर गया। देखो,

भूख, रोग गिरि सों गिरन, शस्त्र आगि विष नीर।
एक बहाने से सदा देही तजै सरीर॥

इसी बीच दीर्घराव नाम सियार अहार के लिये इधर उधर भटकता था कि उस की आँख मरे हुए साँप सुअर हिरन और बहेलिए पर पड़ी। उसने सोचा कि 'अहा हा! बड़ी भाग से बहुत सा खाने को मिला! बात तो ठीक है—

बिन चेते दुख परत है ज्यों देहिन पर आय।
त्यों सुखहू नित मिलत है, बिधि गति जानि न जाय॥

इन के मांस तो तीन महीने के खाने को होगा। क्योंकि नर एक महीना चलेगा हिरन और सुअर दो महीने के खाने को होंगे, सांप एक दिन के लिये पूरा भोजन है, आज तांत ही खा कर रहना चाहिए। तो अब पहिली भूख में कमठे में बँधी हुई बेरस की ताँत खाऊँ। इतना कह कर ताँत काटने लगा। ताँत टूटते ही कमठा जो उछला तो दीर्घराव के पेट में घुंस गया और वह मर गया। इसी से हमने कहा "धन संचय इत्यादि" कहा भी है,

खाय देइ सों धनिन को धन नित गनिबे जोग।
मरे करैं जन और ही धन नारिन कर भोग॥

अब पुरानी बातों का क्या सोच! क्योंकि—

अनपायनि चाहैं नहीं नसे नहीं बिलखायँ।
पंडित जन नहिं नेकहू बिपति परे घबरायँ॥

अब, भाई, तुम सदा, चैन से रहो, कभी जी छोटा न करना; क्योंकि—

विद्या पढ़हु मूढ़ नर रहहीं।
करैं काज सोइ पंडित अहहीं॥
जो औषधि कोउ चतुर बतावत।
नामहिं तासु न. रोग नसावत॥
और, जो न काम महँ हाथ लगावत।
ताको बुद्धि काम नहिं आवत॥
अन्धा यदपि दीप कर धारत।
पै आगे धन नाहिं निहारत॥

और ऐसे अवसर पर संसार की दसा देख ढारस रखना चाहिये,

ठाँव तजे सोहैं नहीं नख मानुष औ केस।
बादर मन्त्री कुलवधू बाम्हन दसन नरेस॥
और ठाँव छोड़ि चलि जायँ सज्जन जन मृगराज गज॥
ठावहिं परे बिलायँ कौआ, मृग, कायर पुरुष॥
और सुख भोगिय दुख झेलिये, जैसी बीते आय।
चक्के के चक्कर सरिस जग महँ दसा लखाय॥

बात तो यह है।

धीर गँभीर कोऊ बिनहूँ धन के पद उत्तम पावत है।
किपिन लाख भरे घर में छन एक में मान नसावत है॥
आश्रय जो गुन कोटिन को जेहि सो बन जन्तु डरावत है।
सिंह को चाल सो हेम की माल धरे कहुँ कुत्तेहि आवत है॥
क्योंकि, गर्व करो धन पाय, क्यों सोचौ धन के नसे।
गेंद समान लखाय, गिरन उठत नर को सदा॥
और, नये धान खन प्रीति अरु तरुनी बादर छाँह।
जोवन धन सुख भोग सब नसैं एक छन माँह॥
और, करु अहार चिन्ता न बहु, तेहि लखु रच्यो बिधातु।
छाती में भरि दीन्ह जब जन्यो तेहि तब मातु॥
सुनो, उज्जल कीन्हे हंस जिन कीन्ह रंगीले मोर।
हरे कीन्ह जिन सुक सोई देहै भोजन तोर॥

और भले लोगों की चाल सुनो—

दुःख देत बटुरन समय दुःख देत पुनि जात।
सम्पति में मोहत कहा, धन यह सुख की बात॥
और, धर्म हेत धन चाहते भलो जो रहै न चाह।
कीचर धोवन ते भलो परै न ताकी राह॥
क्योंकि, थल में बिगत्रा जल मगर पंछी भखैं अकास।
मरे मांस ज्यों नोचि सब करैं धनिक कर नास॥

और, नीर आगि नृप चोर से बन्धुहु से धनवान।
डरत सदा नित मीच से जग के जन्तु समान॥
और, दुख के पूरे जनम में और अधिक दुख काह।
मिलै न सो सम्पति परम जो लहि रहै न चाह॥
और, भी सुनो भाई—
दुख सन आवत रहत धन जात परम दुख देत॥
धन की बहु चिन्ता नहीं करत चतुर यहि हेत॥
इक तृष्णा को जो तजै सम्हि रंक औ राउ।
परि ताके बस दासपन अपने माथ चढ़ाउ॥
और, करत करत नित चाह मन चाह बढ़त ही जाइ।
परम लाभ सोइ जो लहै सब की चाह नसाइ॥
और अब क्या है, हम सब सुख चैन से बात चीत करैं; क्योंकि—
छन में बिनसै कोप औ रहै जन्म भरि प्रीति।
दान रहै बिन अर्थ यह सदा बड़न की रीति॥

इतना सुन लघुपतनक बोला, "भाई, मन्थर, तुम धन्य हो! तुम्हारे पास रहैं; क्योंकि,

सज्जन ही आपति परे सज्जन सकै सँभारि।
परे कीच ज्यों गजन को गज ही सकै उबारि॥
और, उत्तम धनि सज्जन नर सोई।
पूजन जोग सदा सोइ होई॥
जेहि याचक जन औ सरनागत।
ह्वै निरास कबहुँक नहिं त्यागत॥"

वहाँ यह तीनों मन माना आहार विहार करते हुए सुख से रहे। एक दिन चित्रांगद नाम एक हिरन किसी के डर से भागा हुआ इनसे आकर मिला। इन तीनों ने यह समझा कि पीछे कोई डर का कारण भी आता होगा। इसीसे मन्थर

जल में चला गया, मूस बिल में घुस गया और कौआ उड़ कर पेड़ पर बैठा। लघुपतनक ने दूर तक देखा तो डर की कोई बात दिखाई न दी। तब तो सब फिर इकट्ठा हो गए। मन्थर ने कहा, "भाई हिरन अच्छे हो; आओ पानी वानी पियो और यहीं रह कर इस बन को सनाथ करो"। चित्रांगद बोला, "बहेलिये के डरसे तुम्हारी सरन आया हूँ और तुम लोगों के साथ मिताई करना चाहता हूँ।" हिरण्यक बोला, 'हम लोगों के साथ मिताई तो ऐसे ही हो जायगी, क्योंकि—

एक होत है जन्म को एक पुनि नात लगाय।
एक हितन के वंश को दुख सन एक बचाय॥

यह आप ही का घर है, सुख से रहिए।' इतना सुनते ही हिरन ने बड़ा सुख पाया और घास चर, पानी पी, ताल के पास छाँह में बैठा। कहा है—

ईंट गेह औ कूपजल बरगद तरु की छाँह।
सरदी में गरमी करें ठंढे ग्रीषम माँह॥

तब मन्थर बोला, "भाई हिरन, तुम्हें किसका डर है? क्या इस सूने बन में अहेरी फिरा करते हैं? मृग ने कहा, कलिंग-देश में आज कल रुक्मांगद राजा है। वह दिग्विजय करता पलटन के साथ चन्द्रभागा नदी के तीर उतरा है। सबेरे कपूरताल के पास आवैगा। इतना मैं ने सुना है। इससे यहाँ भी सबेरे रहना ठीक नहीं। जो करना हो सो अभी से करो"। इतना सुनते ही कछुआ डर कर बोला "भाई हम तो दूसरे ताल को जायँगे" हिरन और कौए ने कहा "बहुत अच्छा"। हिरण्यक कुछ सोचके बोला "जब दूसरे ताल में पहुँचे तब ही मन्थर की कुशल समझो, थल में इनके लिये कठिन ही है। क्योंकि—

जनजन्तुन बल जल अहै श्वापद को निज मान।
किलानिवासिन को किला नृप को मँत्रि सुजान॥

भाई लघुपतनक, यह सिखावन वैसाही होगा—

निज तिय को सतनास ज्यों अपने दृगन निहारि।
भयो दुखी जिमि बनिक सोइ ह्वैहै दशा तुम्हारि॥"

और सब बोले "कैसे"? हिरण्यक ने कहा "कन्नौज में बीरसेन राजा है। उसने बीरपुर नाम नगर में तुङ्गबल नाम एक राजकुमार को युवराज कर दिया। युवराज बड़ा धनी और जवान था। एक दिन नगर में फिर रहा था उसकी आँख एक बनिए की जवान पतोहू पर पड़ी। उसका नाम लावण्यवती था। वह उसी घड़ी से व्याकुल हो गया और गढ़ में जाकर उसने एक दूती को लावण्यवती के पास भेजा। कहा है—

इन्द्रिय को बस राखत है निज नीति की राह चलै सो सयाना।
लाज न त्यागत सील सकोच न छाँड़त है नहिं भूलत ज्ञाना।
पंख सी नीली बरौनी लसी तिय भौंह कमान पै कान लौं ताना।
धीरजनासनहारो लगै जब लौं नहिं तीछन ईछन बाना॥

लावण्यवती भी राजकुमार को देखते ही उसके बस में हो गई। कहा भी है,

ये नारिन के दोष, सहस, माया, लोभ बहु।
झूठ, व्यर्थ ही रोष, मैलापन औ मूढ़ता॥

दूती की बात सुन लावण्यवती बोली "मैं पतिव्रता हूँ, पराये मर्द को छुऊँगी भी नहीं। क्योंकि—

सो नारी जो पतिव्रता, पतिहि गनै निज प्रान।
रहै चतुर घर काज में, जन्मै जो सन्तान॥

और, कोइल सोभा मधुर सुर, नारिन पतिव्रत जान।
विद्या सोभा विकल की छमा सन्त की मान॥

जो प्राणनाथ कहेंगे वही बिना सोचे विचारे करूँगी"। दूती ने कहा, 'सच' लावण्यवती बोली "सच नहीं तो और क्या?" इस पर दूती ने लावण्यवती की सारी बातें तुङ्गबल से जाकर कहदीं। तुङ्गबल बोला 'मेरे तो काम के विषम बान लगे हैं, उसके बिना कैसे जिऊँगा"। कुटनी बोली "महाराज वह बनिया आप पहुँचा जायगा।" उसने पूछा "कैसे? कुटनी ने कहा "उपाय कीजिये। कहा है—

बल से होत न काज सोइ जो करि सकैं उपाय।
हाथिहि मारो स्यार ज्यों दलदल के मग जाय॥

राजकुमार ने पूछा, "कैसे?" उसने कहा, 'ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम एक हाथी था। उसे देख सब सियारों ने सोचा जो यह किसी उपाय से मरै तो हम लोगों को चार महीने पेट भर खाने को हो जाय। उनमें एक बूढ़ा सियार बोला, हम उपाय करेंगे। इसके पीछे वह धूर्त कर्पूरतिलक के पास जा दण्ड-वत कर हाथ जोड़ बोला, 'महाराज! मेरी ओर निहारिये।' हाथी बोला 'तू कौन है?' कहाँ से आया है? उसने कहा, मैं, स्यार हूँ। सब बनबासियों ने मिल कर मुझे आपके पास भेजा है, कि हम लोग विना राजा के रह नहीं सकते, सो आपको ऐसा जोग जान बन का राजा करने को सब ने विचार किया है। क्योंकि—

रहैं प्रतापी शुद्ध हैं जाके कुल आचार।
नीति निपुन सो राज के जोग नरेस उदार॥

और देखिये, पहिले लखिय नरेस, पीछे संपति, नारि तब।
बिन राजा को देस, कहाँ नारि, सम्पति कहाँ?

और, जग कर भूप अधार है पावस मेघ समान।
विना वृष्टि कछु दिन जियै विन नप बचैं न प्रान॥

क्योंकि, चलैं सदा मर्याद पर बहुधा दण्ड डेराय।
आपहि शुद्ध चरित रहै सो नहिं सुगम लखाय॥
रोगी होय कुरूप के धरै न धन कछु पास।
एसहु पति तिय सेवहीं राजदण्ड के त्रास॥

सो महाराज! तुरन्त ही चलिये, नहीं तो साइत टल जायगी। इतना कह कर स्यार तो उठ कर चला और हाथी भी राज के लोभ से स्यार के पीछे दौड़ता हुआ बड़े दलदल में फँस गया। तब हाथी बोला, 'भाई स्यार, हम बड़े कीचड़ में फँस गये।' स्यार ने हँस कर कहा, 'मेरी पूँछ पकड़ के निकल आइये। आपने मेरा विश्वास किया उसका यही फल है। कहा भी है—

हैहो बिन सत संगति जबहीं।
परिहौ नीच संग महँ तबहीं॥'

फिर तो सब स्यारों ने मिलकर उसे नोच खाया। इसी से मैं ने कहा, 'बल से इत्यादि'। इस पर कुटनी के कहने से उसने बनिये के लड़के को नौकर रख लिया और जितने विश्वास के काम थे सब उसी को सौंप दिये। एक दिन कुटनी के कहने से राजकुमारने नहा धो, हाथ में सोने का कड़ा पहिन बनिए से कहा, 'चारुदत्त! हम एक महीने तक गौरी का व्रत करेंगे। तुम आज से नित्य साँझ को एक अच्छे कुल की जवान स्त्री ले आओ। हम उसकी पूजा करेंगे।" उसके कहने पर चारुदत्त नित्य एक स्त्री लाया करता था और राजकुमार के पास पहुँचा के छिप कर देखता था कि क्या करता है। तुङ्गबल दूर ही से उस स्त्री को बिना छुए चन्दन फूल गंध कपड़ा गहना चढ़ा कर बीड़ा देकर बिदा करता था। बनिये को यह देख विश्वास हुआ और एक दिन लालच में पड़ कर वह अपनी ही बहू लाया। तुङ्गबल ने जो अपनी प्यारी लावण्यवती को पहिचाना तो झपट के उसे

गले से लगा लिया और बड़े हर्ष से उसको प्यार कर पलँग पर उसके साथ सोया। यह लीला देख बनिया चकराया और उसे कुछ न सूझा, वरन् मिट्टी की मूरत ऐसा चरित्र देखता ही रह गया। वैसा ही तुम्हें भी झींकना होगा।' उसकी बात तो किसी ने न सुनी और मन्थर ताल से निकल कर चला। मूस, कौआ और हिरन भी उसके पीछे चले। इतने में एक बहेलिया वन में घूमता था, उसने मन्थर को पकड़ा और अपने भाग की बड़ाई कर उसे लाठी में बाँध घर की ओर चला। हिरन, कौआ और मूस भी बहुत दुखी हो उसके पीछे पीछे चले और हिरण्यक रो रो कर कहता था—

रह्यो एक दुख सिंधु अपार।
ताके आजहुँ गयों नहिं पार॥
दूसर दुख को लगो चपेट।
काने चोट कनौड़े भेट॥

और सहज मित्र जग महँ मिलै उदय होत जब भागि।
साँची प्रीति खरी लखै परे विपति की आगि॥

फिर सोचके, किये कर्म यह जग जोइ जोई।
कुछु दिन गये फलै सोइ सोई।
भले बुरे फल सब इहँ देखे।
पूर्व जन्म के फल केहि लेखे॥

और संसार ऐसा ही है।

संपति संग आपति लगी, मौत देह के संग।
संगम साथ वियोग नित, उपजन के संग भंग॥

फिर सोचके बोला,

पात्र प्रीति विश्वास कर दुख सन रक्षनहार।
दुइ अक्षर ये मित्र के किन विरचे संसार?

आँखिन के हित प्रीति रसायन चित्त आनन्द बढ़ावत है।
बाँटत जो सुख दुःख सों मित्र कोऊ विरला जन पावत है।
लालच से धन के बढ़ती मह और जो मित्र कहावत है।
सो मिलि है सब ठाँव सदाई विपत्ति तिन्हैं परखावत है॥

इस भाँति रो गा के हिरण्यक चित्राँग और लघुपतनक से बोला, "जब तक बहेलिया वन से न निकले मन्थर के छुड़ाने का उपाय करना चाहिए।" दोनों बोले "बताओ क्या करें ?" हिरण्यक ने कहा "चित्राँग ताल के कंठ पर जाके मुरदा ऐसा पड़ जाय। कौआ भी उसके ऊपर बैठके उसकी आँखें खोदै! बहेलिया माँस का लोभी कछुआ रख देगा और हिरन के पास जायगा। इस बीच हम मन्थर के बन्धन काट देंगे" चित्राँग और लघुपतनक ने तुरन्त ऐसा ही किया। बहेलिया भी थका माँदा पानी पीकर ताल के पास ही बैठ गया। हिरन को देख उसने कछुए को वहीं छोड़ दिया और छूरी ले उसकी ओर चला। इतने में हिरण्यक ने मन्थर के बन्धन काट दिये और वह ताल में घुस गया। हिरन भी बहेलिए को पास आता देख उठके भागा। बहेलिया निराश लौट के पेड़ के तले जो आया तो कछुआ भी न था। तब उसने सोचा, 'देखो किसी ने ठीक कहा है—

धावत झूँठी बात पर जो तजि धन निज पास।
झूठी झूठी ही रहै होत साँचिहू नास॥

और अपने ही काम पर पछताता हुआ घर चला गया। मन्थर अपने साथियों समेत सुख से अपने घर गया।

इतना सुन राजकुमार आनन्द से बोले, 'गुरूजी हमने सब सुना। जो हम चाहते थे सोई हुआ। विष्णुशर्म्मा बोला तुम लोगों के और भी सब मनोरथ सिद्ध हों।'

लोक लहैं सुख संपति भोग, सुमित्र लहैं नित लोग सुजाना।
धर्म की राह पै नीति सदा महि पालैं महीपति तेज निधाना।
सज्जन चित्त हुलास के हेत रहैं नित नीति नवोढ़ समाना।
भूप प्रजा सब केर सदा मुद मंगल नित्य करैं भगवाना॥

इति श्री अवधवासी भूपउपनाम सीताराम कृत नई राजनीति का
पहिला भाग समाप्त हुआ॥

मित्रों में फूट

राजकुमारों ने कहा, "गुरुजी! हम लोगों ने मित्रों का मिलना सुना। अब मित्रों का फूटना सुनना चाहते हैं।" विष्णुशर्म्मा बोला, 'सुनिए—

बढ़यो नेह गम्भीर बन सिंह बैल के बीच।
फूट कराई लोभ बस तिन महँ गीदड़ नीच।

राजकुमारों ने कहा "कैसे?" विष्णुशर्म्मा बोला, "दक्षिण देश में सुवर्णवती नाम एक नगरी है। उसमें वर्द्धमान नाम बड़ा धनी बनिया रहता था। उसके पास बहुत धन होने पर भी अपने भाई बन्दों को बहुत बढ़ा देख और भी धन बढ़ाने को उसका जी चाहा।

क्योंकि, नीचे देखत काहु की महिमा बाढ़त नाहिं।
ऊपर देखत जगत में सबै दरिद्र लखाहिं॥

और, धनिक करै जो ब्रह्मबध तेहि पूजत सब लोग।
उपजो लनि सम बंस में निर्धन परिभवजोग॥

क्योंकि आलस, सेवा नारि की, जन्म भूमि की चाह।
रोगी तन, संतोष, डर रोकैं बढ़नी राह॥

थोड़े ही धन से रहै जो नर सदा अघान।
जानि कृतारथ ताहि नहिं बढ़वत है भगवान॥
अरितापन बल तेज सुख, जेहि उछाह नहिं होइ।
ऐसो सुत जनि जाइयो, कबहुँक जग तिय कोइ॥
अनपायहि पावन चहौ, पायहि धरो सँभारि।
सँभरे धनहि बढ़ाइये, खरचौ बढ़ेहि बिचारि॥

धन जो न बढ़ा तो थोड़ा ही थोड़ा खरचने से भी कुछ दिन में उड़ जाता है और भोग न किया तो किस काम का। कहा है, काजल को नित घटत लखि दीमक बढ़त निहारि।

दान पढ़न के काज में बितवै दिवस बिचारि॥
बूँद बूँद से काल में भारी घट भरि जात।
विद्या धन औ धर्म को सोई रीति लखात॥

ऐसा सोच वर्द्धमान ने संजीवक और मन्दक नाम दो बैल गाड़ी में जोते और बहुतेरी व्यापार की चीज़ें लाद काश्मीर की ओर चला।

क्योंकि, समरथ ममुक्षन भार नहिं दूर नहीं बलवान।
पण्डित को परदेश नहिं मेलिन को नहिं आन॥

चलते चलते दुर्ग नाम जङ्गल में संजीवक का पैर टूट गया और वह गिर पड़ा। तब वर्द्धमान ने सोचा—

'जतन करै बुधिमान नर निनप्रति नीति बिचार।
फल सोई पुनि होत है जो बिधि लिखा लिलार॥
विस्मय कबहुँ न कीजिये काज बिघन तेहिं लेखि।
तजि विस्मय सिधि पाइये सहित उछाह विसेखि॥

ऐसा सोच वर्द्धमान संजीवक को वहीं छोड़ आगे बढ़ा। संजीवक भी ज्यों त्यों तीन पैर से लँगड़ाता हुआ वहीं ठहरा।

ऊँचे परवत सों गिरै डूबै सिन्धु अपार।
साप डसै हूं को करै रक्षा आयुद्वार॥
और, नहिं अकाल पै कोउ मरै लगेहु सैकरन बान।
समय परै कुसहू चुभे छूटि जात हैं प्रान॥
क्योंकि, मरै न जासु दैव रखवारा।
बचै न बहत दैव जेहि मारा॥
जियै अनाथ बनहुँ महँ त्यागा।
बचै न घर किय जतन अभागा॥

कुछ दिन पीछे संजीवक भी इधर उधर टहलता बन में सुख से खाता पीता मोटा टाँठा हो गया। उसी बन में पिंगल नाम सिंह अपने बाहुबल से राज करता था।

कहा है, करैं न मृग कछु सिंह कर राजतिलक के काज।
अपने भुजबल सों रहै सो बन महँ मृगराज॥

एक दिन प्यासा हो, वह सिंह यमुना के तीर पर गया। उस जगह उसने संजीवक का डकारना सुना। आगे कभी उसने साँड़ को डकारते हुए सुना तो था ही नहीं, उसे प्रलय के बादल की गरज सा लगा। सुनते ही पानी बिना पिए लौटा और अपनी माँद के सामने आकर चुपचाप बैठ गया। जी में यही सोचता था कि यह क्या है! उसके मंत्री के दो लड़के करटक और दमनक थे। उन दोनों ने सिंह की यह दशा देखी तो दमनक करटक से बोला 'भाई करटक! क्या बात है जो राजा बिना पानी पिये धीरे धीरे लौटे आते हैं?" करटक बोला, 'भाई, मेरा कहना मानो तो इसकी सेवकाई ही न करो। इसकी चिंता से हमें क्या। हम दोनों को यह मानना ही नहीं, इसीसे देखो हम लोगों को कितना दुख उठाना पड़ा है।"

देखु, सेवा सन धन लहन हित काह न सेवक कीन्ह ।
देहहुँ केरि स्वतन्त्रा परकर मूढ़न दीन्ह ॥
सीत बात गरमी सहैं जिती पराश्रित लोग ।
ताके आधेहु सेइ हरि करै स्वर्ग सुख भोग ॥
जन्म सुफल जब लगि रहै जौ लौं आश्रित नाहिं ।
पराधीन जे रहत ते मरे सरिस जग माहिं ॥
मूढ़न धन की चाह में ज्यौं बज़ार की नारि ।
करत और के जोग नित निज तन सदा सँभारि ॥

और, बोलु मौन रहु आउ चलु उठु नवाउ पुनि माथ ।
खेलत हैं यहि विधि धनी आमग्रसेन के साथ ॥

और, चंचल रहै सुभाव सन परै कुठाँवहु जोइ ।
आदर मन सेवक लखैं दृष्टि स्वामि की सोइ ॥

और, सहै दुःख सुख हेत पुनि, तजै जियत हित प्रान ।
उन्नति हित सेवक नवै, मूढ़ को तेहि सम आन ॥

और—बोलत सो बकवादी बनै अरु मौन रहे नर मूढ़ कहावत ।
दोष छमैं तो बनै डरपोक, सहैं नहिं तो तेहिं नीच बनावत ॥
पास रहै नित ढीठ कहैं औ प्रगल्भ नहीं है जु पास न आवत ।
सेवा को धर्म अगाध समुद्र है जोगिहु जामें प्रवेस न पावत ॥

दमनक बोला—भाई! ऐसी बातें कभी मन में भी न लाना ।

केहि कारन सेइय नहीं कोटि जतन नरनाह ।
ह्वै प्रसन्न छन एक में पुरवैं सब मनचाह ॥"

करटक बोला "तो भी हम को इस से क्या काम? बेकाम का काम सदा छोड़ना चाहिए ।

देखो, करन चहै बेकाम के, कामहिं धर्म विचारि ।
मरै बीच सो मूढ़ ज्यों, वानर कील उपारि ॥"

दमनक ने पूछा, "कैसे?" करटक बोला, "मगध देश में धर्मारण्य के पास शुभदत्त नाम एक कायस्थ एक धर्मशाला बनवा रहा था। उसमें एक बढ़ई ने लकड़ी की एक बल्ली कुछ दूर कुल्हाड़ी से चीरी और एक पच्चर ठोंक छोड़ दिया। थोड़ी देर में बन के बन्दरों का एक बड़ा झुण्ड वहाँ आ पहुँचा। उनमें से एक बन्दर की मौत जो आई तो पच्चर हाथ से पकड़ बल्ली पर चढ़कर बैठ गया और उसकी टाँग बीच में पड़ गई। बन्दर तो जनम के चंचल होते ही हैं, उसने कील को दोनों हाथों से पकड़ करके खींच लिया। पच्चर निकलते उसकी टाँग पच्ची होगई और वह तुरन्तही मर गया। इसी से हमने कहा है कि 'करन चहै इत्यादि'। दमनक बोला, "तो भी सेवक का काम यह है कि मालिक का रुख देखा करे"। करटक बोला "जो बड़ा मंत्री हो, जिसको सब राजा काज सौंपा हो, सो करै। जो और के पीछे टुकड़ा पाते हैं उनको और किसी के काम की चर्चा न करनी चाहिए।

देखो, स्वामिहित और को काज करै जो कोइ।
तहँ दुःख होरा किये गर्दभ के सम सोइ॥"

दमनक बोला "कैसे"? करटक ने कहा "बनारस में कर्पूरपट नाम एक धोबी था। एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ गाढ़ी नींद में सो रहा था, उसी समय उसके घर में चोर घुसा। उसके आँगन में एक गदहा बँधा था और एक कुत्ता बैठा था। चोर को देख गदहे ने कुत्ते से कहा, 'देखो, यह तुम्हारा काम है। तुम भूँक भूँक के स्वामी को जगा दो।' कुत्ता बोला, तुम हमारे काम की चिन्ता न करो, तुम नहीं जानते, हम इनके घर की कैसी रखवारी करते हैं और यह हमें पेट भर खाने को भी

नहीं देते। जब तक स्वामी दुख नहीं पाते, सेवक का आदर नहीं करते। गदहा बोला, सुन रे नीच—

मरै सो जन मागन लगैं काम परै जो दाम।
कुत्ता बोला—'सो कि नाथ आदर करै जनहि परै जब काम॥
क्योंकि, सेवक सेवन स्वामि को परै जो अवसर आय।
पुत्र जनन के काज में चहिय न और सहाय॥'

तब तो गदहा रिस से बोला, 'तू बड़ा पापी है, तू स्वामी के काम में ऐसी भूल करता है? अच्छा रह हम हीं उसको जगा देंगे। क्योंकि,

रविहिं सेइये पीठ से, उर से सेइय आगि।
स्वामिहिं सारे भाव से, परलोकहिं छल त्यागि॥

इतना कह गदहा रेंकने लगा। धोबी रेंकना सुन चौंका और नींद बिगड़ने से रिस में भरा गदहे को लाठी से इतना मारा कि वह मर गया। इसीसे हमने कहा कि समुझि इत्यादि। हम लोगों का काम यह है कि इधर उधर पशु ढूँढ़ा करैं। सो अपने काम की चर्चा करो (सोचके) सो आज उसका भी काम नहीं। क्योंकि खाने को बहुत सा बचा रखा है।'

दमनक रूस कर बोला। 'क्या आप राजा की सेवकाई निरा खाने के लिये करते हैं? सेवक होके ऐसी बातैं करते हैं? क्योंकि

हितकर भला करन के काजा।
पीड़न हित निज वैरि समाजा॥
नृपआसरा चहैं पण्डित नित।
थोरेहि सेवक बनैं पेट हित॥

और, मित्र बन्धु अरु विप्र को, जियत जियावे जौन।
ताको जीवन सुफल है, निज हित-जियै न कौन॥

और जिये जाके जियत, जीवन तासु प्रमान।
मरें पेट निज चोंच सों कागहु धरत प्रमान॥

देखो, पैसे पैसे को बिकैं जग में पुरुष अनेक।
लाख दिए इक मिलत हैं, लाखहु दिए न एक॥

क्योंकि, हैं सब मनुज समान, सेवक तिन महँ नीच हैं।
सो क्यों धारै प्रान, सेवक हू जो नहिं रहैं॥
काठ लोह अरु नारि नर हय गज वस्त्र पषान।
एक एक सें नहिं रहैं अन्तर होय महान॥

तांत और चर्बि लगी अति थोरही मांस नहीं कछु हाडहि पाई।
कूकुर होत प्रसन्न सदा नहि यद्यपि तासों सकै सो अघाई।
सौंहहिं देखत स्यार खड़ो पर मारत है गज को मृगराई।
जोगहि चाहत है फल लोग विपत्ति सकै नहिं मान नसाई॥

और स्वामी सेवक का अन्तर देखो—

पाँव पड़त निज पूँछ हिलावत।
कूकुर परि मुँह पेट दिखावत॥
बीस खुशामद करत महावत।
अन्न लेन गज सूँड़ बढ़ावत॥

और, बल विद्या कर यश जेहि नाहीं।
जिये सो एकहु छन जग माँहीं॥
सो जग महँ क्यों जियत अभागा ?
ज्यों बलि खाय जिये नित कागा॥

और, हित औ अहित विचार न जानत।
वेद धर्म मर्याद न मानत॥
केवल रहै पेट चिन्ता जेहि।
मनुज रूप पशु क्यों न कहिय तेहि॥

करटक बोला 'अजी! हम तुम तो छोटे सेवक हैं, हमें इस बिचार का कौन काम?'

दमनक ने कहा 'बड़ा और छोटा होना तो चार दिनों की बात है। कभी छोटा सेवक मंत्री हो जाता है और कभी मंत्री छोटा सेवक हो जाता है।

क्योंकि, नहिं स्वभाव सन कोउ संसारा।
होते नीच उदार पियारा॥
निज चालहि सन जग महँ भाई।
लहैं लोग लघुता गरुआई॥

क्योंकि, बड़े जतन सन लाय, धरैं शैल पर ज्यों सिला।
सो छन महँ गिरिजाय, त्यों नर निज गुनदोषवस॥

भाई, काम ही से घटती बढ़ती होती है।

अपनेहि कर्मन होत हैं नीच ऊँच संसार।
कूप खनैया देखु पुनि भीति उठावन हार॥

करटक बोला, 'तो तुम क्या कहते हो'? दमनक ने कहा 'देखो आज राजा पानी पीने गये, सो बिना पिये डरसे घबड़ा के लौट आए' करटक ने कहा 'तुम क्या जानते हो?'

दमनक बोला, 'समझदार भी कोई बात नहीं जानते?'

कहा भी है, कही बात पसुहूँ सब जानत।
हय गज ज्यों सवार कहँ मानत॥
बिना कहे जानहिं पंडित जन।
लखि अकार जानत सबकर मन॥

और, इङ्गित और अकार, बोलचाल मुख रङ्ग लखि।
लखि मुखनयनविकार, मनको भाव विचारिये॥

तो इसी डरही की बात उठाके हम राजा को अपने बस करेंगे।

क्योंकि, अवसर के बोलैं वचन भाव सरिस प्रिय वानि।
कोप करै निज शक्ति लखि सोई पंडित ज्ञानि॥

करटक बोला 'भाई! तुम्हें सेवकाई नहीं आती। देखो—
बिन पूछे बोलैं वचन बिन बोले ढिग जाय।
अपने मन सों सुख लहैं, मूढ़ गनै तिहि राय॥'

दमनक बोला, 'भाई, कैसे नहीं आती?
देखो, भली बुरी कोउ बात, जग नहिं अहै स्वभाव सन।
जो जेहि भलो लखात, तेहि सो मानत है भलो॥
और, जैसी जाकी भावना ताहि तुरत पहिचानि।
अपने वस करि लेत हैं स्वामी को नर ज्ञानि॥
और हैं कोइ हाजिर क्या हुकुम बोलै शीश नवाय।
यथाशक्ति निज नाथ की आज्ञा पालत जाय॥
और धीर धरै, थोड़ा चहै, साथ रहै ज्यों छाँह।
काज कहै, ठहरै न सो, रहै राज घर माँह।

करटक ने कहा बिना औसर तुम जो गए और राजा ने आदर न किया?' दमनक ने कहा 'तो क्या? सेवक को स्वामी के पास जाना ही चाहिए।'

क्योंकि कायर नर डर दोष से काज करै कछु नाहिं।
डरत अजीरन को तजै, को भोजन जग माहिं॥

देखो, नीच होइ मूरख कै होई।
रहै पास मानत नृप सोई॥
राजा लता नारि की रीती।
रहै जो ढिग तेहि मिलै सप्रीती॥'

करटक बोला तो वहाँ जाके क्या कहोगे? दमनक ने कहा—'सुनो, पहिले तो हम यह देखेंगे कि हमसे राजा राज़ी हैं कि नहीं। करटक ने पूछा 'कैसे जानोगे'? दमनक ने कहा, 'सुनो—

दूरहि से देखब हँसब, मधुर वचन कहि दान।
पीठपीछे हूँ जब करै, अपने सुगुन बखान॥
सुनै ध्यान आदर सहित, जब पूछै कछु बात।
प्रिय बातन जब सुध करै दोषहु गुन गनि जात॥
सेवक हू न रहै तऊँ दिखरावत अनुराग।
ऐसे जन मैं जानिए स्वामी को मन लाग॥

और, करै आज को काल जब, फल न देइ दै आस।
स्वामी को जो है फटा, यह लखि जानु प्रकास॥

इतना जब जान लेंगे तब वैसी बातें कहेंगे जिसमें हमारे बस हो जाय।

कहा है, 'बिगरे काज विपति दुखदाई।
होत काजसिधि किये उपाई॥
नीतिचाल कर करत प्रयोगा।
प्रगट दिखावात हैं बुध लोगा॥'

करटक बोला, 'तोभी बिना औसर के कुछ न कहना,

क्योंकि, कहै बृहस्पति हू जबहिं बिन अवसर की बात।
बुधिप्रमान खोवै सदा तासु मान घटि जात'॥

दमनक ने कहा, 'भाई, तुम डरो मत, हम कभी बिना अवसर की बात न कहेंगे।

क्योंकि, अवसर बिनसे, दुख परे, चलै भटकि जब राह।
बिन पूछेहु सेवक सदा स्वामिहिं देइ सलाह॥

जो हमने अवसर की बात न कही तो हम से मन्त्रीपना कैसे निबहेगा।

क्योंकि, मिलै वृत्ति यहि लोक में जेहि भल कहैं महान।
सो गुन तेहि रच्छै सदा बढ़वै पुरुष सुजान॥

तो अब हम पिङ्गल के पास जाते हैं।' करटक ने कहा 'जाओ, करो जो तुम्हारे जी में आवे।'

जाइय जय हित छेम हित, धन पावन की आस।
फिरि लौटन हित, करन हित निज बैरिन को नास॥

इस पर दमनक चकराया हुआ सा सिंह के पास गया। राजा ने उसे दूर ही से देखा। सेवक लोग आदर समेत उसे पास ले गए और वह वहाँ दंडवत कर हाथ जोड़ बैठा। राजा ने कहा 'बहुत दिनों पर देख पड़े।' दमनक बोला 'महाराज! श्रीचरणों को मेरा काम ही क्या है? तौभी अवसर पाके सेवकों का धर्म है कि दर्शन करना चाहिए, इसीसे चला आया।

खोदत दाँत, कान खुजलावत।
तृनहु काम राजन के आवत॥
तुख बोलत धारे कर दोई।
आवै काम न क्यों नर सोई?

बहुत दिनों तक स्वामी ने सुध नहीं ली, इससे मेरी बुद्धि भी नस गई होगी, तो भी देखा कि—

जे स्वभाव सन चतुर सुजाना।
कैसहु तासु होय अपमाना॥
कबहूँ नसै बुद्धि नहिं तिनकी।
ऊँची लव रह दबिहु अगिन की॥

और श्रीचरणों को तो सदा भले बुरे लोगों में अन्तर मानना चाहिए, क्योंकि,

बिना भेद के जब गिनत, सब सेवक नरनाह।
काज करन के योग नर, छोड़ैं चित्तउछाह॥
उत्तम मध्यम अरु अधम, तीनि खानि के लोग।
तीनि खानि के काम में रहैं लगावन योग॥

सेवक औ भूषन लगैं अपने अपने ठाँवँ।
घुंघुरू धरैं न सीस पर, मुकुट धरैं नहिं पावँ॥

और, सोने संग रहन जेहि जोगा।
सीसे संग धरत जो लोगा॥
मनि सोचत नहिं दुःख जनावत।
सब जड़िया कहँ दोष लगावत॥

और काँच मुकुट महँ देहिं जड़ि हीरा पायल माहिं।
सो जड़िया को दोष है हीरा को कछु नाहिं॥

देखिए, यहि सन डर, यह भक्त है, बुद्धिमान, यह बीर।
सेवक गुन जानै लहै काजसिद्धि नृप धीर॥

और, बीना बानी नारी नर शास्त्र हथ्यार तुरंग।
होत सुजोग अजोग परि खानि खानि नर संग॥

और, समरथ है नहिं भक्त, भक्त शक्ति बिन दोऊ वृथा।
मैं समर्थ अनुरक्त, मोहि तजिय जनि प्रभु कबहुँ॥

और, राजा के अपमान से, होत भृत्यबुद्धि नास।
दसा जानि नहिं भूप के पण्डित फटकत पास॥

क्योंकि, पंडित त्यागी राज जब, नीति बिगरि सब जाइ।
नीति नसे डूबै जगत कछुक अधार न पाइ॥

और, राजा मानै जाहि तेहि पूजत हैं सब लोग।
नृप जेहि निदरत होत सोइ सबके निदरन जोग॥"

सिंह बोला, भाई दमनक ! तुम यह क्या कहते हो ? तुम हमारे अमात्य के लड़के बड़े बुद्धिमान हो। इतने दिन किसी नीच के कहने से क्या जानें कहाँ रहे। अब जो तुम्हारे जी में आवे कहो।" दमनक ने कहा, "कुछ पूछना चाहता हूँ। महाराज ताल तक प्यासे गए, वहाँ से बिना पानी पिये घबड़ाकर लौट आए"।

सिंह ने कहा, "तुमने ठीक कहा। तुम्हारे ऐसा हमारा कोई दूसरा विश्वासी सेवक नहीं है। इसी से तुमसे कहेंगे। इस वन में कोई अनोखा जीव आगया है। अब हमें यह वन छोड़ना ही पड़ेगा। तुमने भी उसका गर्जना सुना ही होगा। जैसी उसकी बोली है वैसा ही उस का बल भी होगा।" दमनक ने कहा "महाराज! मैंने भी बड़ी डरावनी बोली सुनी है, पर वह मंत्री कैसा है जो राजा को पहिले देश छोड़ने या लड़ाई करने का मन्त्र दे: और ऐसी ही कामों से सेवकों की परीक्षा होती है कि किसी अर्थ के हैं कि नहीं।

क्योंकि, अपने सेवक बुद्धि बल, नारी अरु नर नात।
विपति कसौटी पै कसे, तांके परखे जात॥"

सिंह बोला "भाई हमें बड़ी चिन्ता है।" दमनक ने अपने मनमें कहा "चिन्ता न होती तो राज का सुख छोड़ के हमसे कहते कि यहां न रहेंगे?" फिर बोला "महाराज, जब तक मैं जीता हूँ, महाराज किसी बात का डर न करैं। इतना ही है कि करटक और कुछ लोगों को भी मुखी कर लेना चाहिये। क्योंकि विपत्ति जब पड़ती है तो साथ देनेवाले नहीं मिलते"। इस पर राजा ने करटक और दमनक दोनों का बडा आदर किया और तब दोनों ने कहा, "महाराज, हम लोग आपकी शंका मिटाने का उपाय न करैं तो फिर मुँह न दिखावेंगे" और वहाँ से चल खड़े हुए। राह में करटक ने दमनक से कहा "भाई, तुमने पहले यह तो जाना ही नहीं कि हम लोगों के किये डर का कारण दूर हो सकेगा या न हो सकेगा, और बीड़ा उठा लिया। किसी का काम न करै और भेंट ले ले यह ठीक नहीं न कि राजा से।

देखो, भूप तेज की रासि, जामें विक्रम जय रहै।
हनै कोप परकासि, है प्रसन्न निधि दै सकत॥

और करिय कबहुँ अपमान जनि, बालकहूँ लखि भूप।
महँ बड़ा सोइ देवता, राजत महि नररूप" ॥

दमनक हँस के बोला, "भाई, कुछ कहो न, हम जानते हैं जिस से डरा है। एक बैल डकारता था। बैल को तो हम लोग खा जाते हैं, सिंह तो सिंह ही है।" करटक बोला "जो ऐसी ही बात है तो स्वामी की शंका वहीं क्यों न दूर कर दी"?। दमनक ने कहा "जो स्वामी की शंका मिटा दी जाती तो हमारी तुम्हारी इतनी पूजा कैसे होती?

स्वामिहि बस राखै सदा, सेवक चतुर सुजान।
रहै न सेवककाज तो, है दधिकर्ण समान॥"

करटक ने पूछा "कैसे?" दमनक बोला, "उत्तर देश में, अर्बुदशिखर नाम पहाड़ पर, एक बड़ा बली सिंह रहता था। जब वह पहाड़ के खोह में जाकर सोता था तो एक मूँस उस के बाल खुतरा करता था। सिंह ने जब देखा कि उसके बाल सब कट गए तो बहुतही बिगड़ कर मूँस के पीछे दौड़ा। मूँस बिल में घुस गया। तब तो सिंह ने सोचा, अब क्या करैं? अच्छा, सुना भी है—

छुद्र शत्रु जो होय तेहि बल सन सकिय न मारि।
छुद्रहि सैनिक कीजिये, तासु बधन अधिकारि॥

इतना सोच, गाँव को चला गया और वहाँ से दधिकर्ण नाम एक बिल्ली को माँस दे फुसलाकर अपनी खोह में लाकर बैठाया। उसके डर से मूँस बिल के बाहर नहीं निकलता था और सिंह सुख से सोया करता था। जब मूँस की आहट पाता तो बिल्ली को और भी माँस देकर आदर करता। एक दिन मूँस भूख के मारे घबड़ाकर बाहर जो निकला तो उसे बिल्ली

ने मार खाया। फिर तो सिंह ने मूँस की बोली न सुनी। जब बिल्ली का काम न रहा तो सिंह ने उसे अहार देना बन्द कर-दिया। इसी से हमने कहा, स्वामिहि बस राखै इत्यादि।"

इसके पीछे दमनक और करटक दोनों सञ्जीवक के पास गये। करटक तो पेड़ के नीचे अकड़कर बैठ गया और दमनक सञ्जीवक के पास जा कर बोला—"अरे बैल, हमें राजा पिङ्गलक ने बन का रखवारा किया है। सेनापति करटकजी की आज्ञा है कि अभी आ या बन छोड़के चला जा। नहीं तो तेरे लिये अच्छा न होगा। न जानें राजा रिस में आकर क्या कर डालें।" इतनी बात के सुनतेही बेचारा बैल, देश का चलावा तो जानता ही न था, डरता काँपता आगे बढ़ कर करटक के पावों पर गिर पड़ा। कहा है—

हाथिहि हांकत जबहि महावत।
बजत घण्ट यह बोल सुनावत॥
बल नहिं बड़ा बड़ी जानहु मति।
बिना बुद्धि हाथिन की यह गति॥

सञ्जीवक डरता हुआ बोला, "सेनापतिजी! जो कहिये सो करूँ"। करटक ने कहा "जो तुम यहां रहना चाहते हो तो श्रीमहाराज के पांव पड़ो। सञ्जीवक बोला, "अच्छा मुझे अभय का वचन दीजिये, मैं अभी आया।" करटक बोला "सुन रे बैल, तू इस बात का डर न कर।

गारि देत शिशुपाल नहिं बोले नन्दकुमार।
तड़पत हरि घनगरज सुनि, नहिं पुनि बोलत स्यार॥

और, नीच दूब नित दबी निहारी।
छेड़त नहीं प्रभंजन भारी॥

ऊँचे तरुन उखारि गिरावत।
बड़े बड़े सँग तेज जनावत॥

तब करटक और दमनक सञ्जीवक को साथ लेकर उसे कुछ दूर छोड़ पिङ्गलक के पास गये। राजा ने उन्हें आदर से बुलाया और दोनों दण्डवत कर हाथ जोड़ बैठ गए। राजा ने कहा "तुमने उसे देखा?" दमनक बोला "हाँ महाराज, देखा। जैसा महाराज ने कहा था वैसा ही है। वह महाबली है। महाराज से मिलने आया है। महाराज सावधान होकर बैठैं। उसकी बोली से डरियेगा नहीं।

कहा है, शब्दहेतु जाने बिना डरै न तेहि सुनि कान।
जानि शब्दकारन लह्यो कुटनी ने बड़ मान॥

राजा ने कहा 'कैसे?' दमनक बोला, 'श्रीपर्वत पर ब्रह्मपुर नाम नगर है। वहाँ पहाड़ की चोटी पर घण्टाकर्ण नाम राक्षस रहता है ऐसा सब लोग कहा करते थे। सो बात यह थी कि एक चोर घंटा चुरा कर भागा जाता था। उस पहाड़ पर एक बाघ ने उसको मार डाला। वह घण्टा बन्दरों के हाथ लगा। उसे वह दिन रात बजाया करते थे। नगर के लोगों ने जब एक मानुष खाया हुआ देखा और घण्टा बजता सुना, तो यह समझा कि घण्टाकर्ण बिगड़ा हुआ है और घण्टा बजाता और मनुष्य खाता है और सब गाँव छोड़ कर भागने लगे। उनमें कराला नाम एक कुटनी ने देखा कि बन्दर घंटा बजाते हैं। इस बात को देख भाल कर वह राजा के पास गई और हाथ जोड़ बोली, "मुझे कुछ मिले तो मैं घण्टाकर्ण को मनाऊँ।" राजा ने प्रसन्न होकर उसे बहुतसा धन दिया। कुटनी ने बन को गोंठ गणेशकी पूजा की और बहुतसे फल लेकर बनमें घुस गई। बन्दरों ने घण्टा छोड़ दिया और फल की ओर दौड़े। कुटनी ने

घण्टा उठा लिया और नगर को लौट आई । वहाँ लोगों ने उसकी बड़ी पूजा की। इसलिये मैंने कहा कि शब्द हेतु इत्यादि।"
इस पर दोनों सञ्जीवक को सिंह के सामने लाए। इसके पीछे सञ्जीवक और सिंह बड़ी प्रीति से रहने लगे। एक दिन उस सिंह का भाई स्तब्धकर्ण आया। पिंगलक उसकी आवभगत कर, उसके खाने के लिये पशु मारने को चला। इतने में सञ्जीवक बोला "महाराज, आज जो हिरन मारे गये थे उनका माँस कहाँ है?" राजा ने कहा, "करटक और दमनक जानें" सञ्जीवक बोला "महाराज देखिए है कि नहीं"। सिंह हँस कर बोला "नहीं है।" सञ्जीवक ने कहा, क्या दोनों खागए?" राजा ने कहा, "खाया, लुटाया और बिगाड़ा भी। यह दोनों नित हमारे पीछे यही करते हैं।"
सञ्जीवक बोला, "यह तो अच्छा नहीं।
कहा है, कीजै सारे काज नित स्वामिहि प्रथम जनाय।
विपति परे बिन पूछेहु कीजै जोग उपाय॥
देत थोरही थोर नित लेइ बहुत एकबार।
गडुआ सम मंत्री करै राजकाज व्यवहार॥
सो मंत्री जानिय चतुर कोश बढ़ावै जोइ।
कोश राज को प्रान है जिये कोश सन सोइ॥
सेवा जोग न होत कोउ कछु आचार बिचारि।
धन न रहे तजि देत हैं अपनी ब्याही नारि॥

राजा में यह बड़ा भारी दोष है। देखिये
लीबो अर्थ अधर्म से, तजिबो रहै जो दूर।
जाँच न करिबो, खर्च बहु, कोश मिलावत धूर॥
क्योंकि मनमाना खर्चा करे बिना बिचारे आय।
नरपति धनद समानहु कछु दिन में नसि जाय॥"

इतना सुन स्तब्धकर्ण बोला "भाई सुनो, दमनक और करटक बहुत दिन के सेवक हैं। इनका काम लड़ाई और संधि के विषय का है। कार्याधिकारी को धन का अधिकार न देना चाहिये। काम बाँटने के विषय में हमने जो सुना है वह कहते हैं,

सुनो, बाम्हन छत्रिय बन्धु को जनि दीजै अधिकार।
बाम्हन सिद्धहु अर्थ को देत लगावै बार॥
छत्री धन निज हाथ लहि दिखरावत तरवारि।
बँधु नात निज गनि बनै सरबस को अधिकारि॥
डरै न अपराधहु किये सेवक होय पुरान।
फिरै स्वतन्त्र, करै सदा स्वामी कर अपमान॥
गनै नहीं अपराध निज उपकारी पद पाय॥
निज उपकार जनाय सो सरबस लूटत जाय॥
सङ्गी जो मन्त्री बनै आप भूप बनि जात।
पिछलो सङ्ग विचारि कै सो नहिं नृपहिं डेरात॥
अन्तर्दुष्ट क्षमा करै सो अनर्थ को मूल।
शकुनि और शकटार ज्यों रहे स्वामिप्रतिकूल॥
महा धनी को मन्त्रि निज भूलेहुँ करिय न राय।
सिद्धन को यह बचन है धन सन बुधि नसिजाय॥
धन हरिबो, बुधिहीनता, अनुरोधन औ भोग।
राजमन्त्रि के दोष ये मानत हैं बुध लोग॥
लेनकाज महसुल नित सावधान रह राय।
भृत्यन आदर दंइ पुनि कामहुँ बदलत जाय॥
दुष्ट नियोगी घाव सम दुख नित देत अपार।
जितना इनहिं दबाइये उगिल देत हैं सार॥
हरैं जो सेवक धन तिनहिं तुरत गहै नृप धीर।
निसरि परत है बस्त्र से तुरत निचोरत नीरि॥

इतना सब समझ के काम करना चाहिये।" पिङ्गलक बोला ठीक है, पर ये दोनों कभी कभी हमारी आज्ञा भी नहीं मानते।" स्तब्धकर्ण बोला "तो यह उचित नहीं—

छमै नहीं निज सुतहु को आज्ञा टारै जौन।
राजा मैं अरु चित्र मैं, कहो भेद है कौन?
और, नसै निठुर को सुजस, विषम की नसै मिताई।
नसै लती को ज्ञान, कृपन को सुख नसि जाई॥
नसै बंस तेहि केर, न जो इन्द्रिय राखै बस।
नसै नृपति को राज, जासु मन्त्री नहिं चोकस॥
और, रिपु अधिकारी चोर औ जेहि मानत नरपाल।
करै प्रजारच्छा सदा इन सब से सब काल॥

भाई! जो हम कहते हैं सो सदा करना। आज तो हम लोग खाना खा चुके, आज से इस घास खाने वाले सञ्जीवक को भण्डारी कर दो।" उसके कहने से सञ्जीवक तो भण्डारी किया गया और पिङ्गलक की प्रीति उसके साथ दिन दिन बढ़ती गई। ऐसे ही बहुत दिन बीते। करटक और दमनक ने जब यह देखा कि खाना देने में भी अब ढील दिखाई जाती है तो दमनक ने कहा, "भाई क्या करना चाहिये? हमही ने अपने पाँव में आप कुल्हाड़ी मारी है। अपने ही किये पर रोना झोंकना भी ठीक नहीं। कहा है—

स्वर्णरेख को परसि मैं, दूती निजहि बँधाय।
हरन चहत मनि साहु सब रोवत हैं पछिताय॥"

करटक बोला "कैसे?" दमनक ने कहा, 'काञ्चनपुर नाम नगर में बीरविक्रम राजा था। उसका एक धर्माधिकारी एक नाई को सूली चढ़ाने को लिये जाता था। राह में कन्दर्पकेतु नाम

एक संन्यासी एक साहु के साथ आया और उसका आँचल पकड़ कर बोला, 'इसे मारना न चाहिये'। धर्माधिकारी ने पूछा, 'क्यों?' वह बोला, 'सुनिए' स्वर्णरेख इत्यादि'। धर्माधिकारी बोला 'कैसे?'। परिव्राजक ने कहा, 'मैं सिंहलद्वीप के राजा जीमूतकेतु का लड़का कन्दर्पकेतु हूँ। एक दिन मैं अपने बाग में टहल रहा था। वहाँ मैं ने एक माँझी से सुना कि इसी समुद्र में चौदस के दिन कल्पवृत्त देख पड़ता है उसके तले रत्न जड़े पलङ्ग पर गहने पहिने, नखसिख से सुन्दर लक्ष्मी ऐसी एक कन्या बीना बजाती है। मैं ने जो सुना तो माँझियों का साथ ले नाव पर चढ़ वहीं पहुँचा और जैसा उसने कहा वैसा ही देखा। उसकी सुन्दरताई देख मुझसे रहा न गया और मैं झट-पट समुद्र में कूद पड़ा। फिर क्या देखता हूँ कि सोने के महल में एक कन्या जवान जवान विद्याधारियों के बीच पलंग पर बैठी है। उसने जो मुझे देखा तो अपनी सहेली भेजी। सहेली से मैंने पूछा तो कहने लगी कि यह कन्दर्पकेलि नाम विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा की लड़की रत्नमंजरी है। इसने यह ठान लिया है कि जो सोने का महल अपनी आँखों आकर देखैगा उसीके साथ मेरा ब्याह होगा। मेरी विद्याधर-कन्या की भेंट हुई और उसने मेरे साथ गान्धर्वविधि से ब्याह कर लिया। इसके पीछे मैं भी उसके साथ बहुत दिन तक सुख चैन से रहा। एक दिन उसने मुझसे एकान्त में कहा स्वामी, यहाँ जो कुछ है सब तुम्हारा ही है; पर यह चित्र स्वर्णरेखा नाम विद्याधारी का है, इसे कभी न छूना। मुझसे न रहा गया और मैंने उसे एक दिन ज्योंही छुआ त्योंहीं उस चित्र ही में से मेरे ऐसी लात लगी कि अपने राज में आकर पड़ा। उस दिन जो मुझे दुःख हुआ वह कहने जोग नहीं। मैंने सब छोड़छाड़ संन्यास लिया और घूमते घूमते तुम्हारे नगर

में पहुँचा। साँझ हुई तो एक ग्वाले के घर में सो रहा। वहाँ क्या देखता हूँ कि रात को ग्वाला घर आया तो उसने अपनी अहीरिन को एक कुटनी से बातें करते पाया। उसे रिस चढ़ी और उसने अपनी स्त्री को पीट पाट खम्भे में कस कर बाँध दिया और आप सो रहा। आधीरात को वही कुटनी नाइन ग्वालिन के पास फिर आई और उससे बोली कि तेरे बिना तेरा यार मरा जाता है। मैं तेरी जगह पर बँध जाती हूँ, तू उसका मनोरथ पूरा कर आ। दूती वहाँ बँध गई और अहीरिन चली गई। इतने में ग्वाला जागा और कहने लगा कि अब क्यों यार के पास नहीं जाती? जब दूती कुछ न बोली तो ग्वाला झुँझलाकर उठा और "मारे गरूर के नहीं बोलती" ऐसा कह कर उसकी नाक काट ली। अहीरिन ने लौट कर दूती से पूछा, "क्या है?" दूती बोली "क्या कहूं, मेरा मुँह देख"। अहीरिन ने नाइन को खोल दिया और आप फिर बँध रही। दूती कटी नाक हाथ में लिये अपने घर गई। सबेरे नाई ने किसबत माँगी तो नाइन ने किसबत तो दी नहीं, एक छुरा निकाल के दे दिया। नाई ने रिस के मारे छुरा उसके ऊपर फेंक दिया। तब तो नाइन ढाढ़ें मार कर रोने लगी और कहने लगी कि नाई चाण्डाल ने नाहक मेरी नाक काट ली और कोतवाल के पास पहुँची। ग्वाले ने थोड़ी देर में अहीरिन को फिर छेड़ा, तो वह बोली, अरे पापी, मुझसी पतिव्रता का मुँह कौन बिगाड़ सकता है मैं जो करती हूँ सो आठों लोकपाल जानते हैं,

क्योंकि,

यम हिय सूरज चन्द्र समीरा।
महि अकास जग पावक नीरा॥
राति दिवस अरु साँझ, सकारा।
जानत मनुजचरित सब सारा॥

मैंने जो अपने व्याहते को छोड़ कभी किसी को मन से भी न सोचा हो तो, हे भगवान्, मेरी नाक फिर जैसी थी वैसी ही हो जाय। ग्वाले ने दिया लेकर जो उसका मुँह देखा तो उस के पावों पर गिर पड़ा। और इन साहु की भी कथा सुनो। यह अपने घर से निकल बारह बरस तक मलयवार में रहे। वहाँ से इस नगरी में आए, तो रात को एक रण्डी के घर सो रहे। उसकी नायिका ने घर के द्वार पर काठ का वैताल लगा रक्खा था और उसके माथे में एक हीरा जड़ दिया था। बनिये ने लालच में पड़ रात को हीरे पर हाथ चलाया तो नायिका ने दूर से डोरी खींची और वैताल ने दोनों हाथों से इन्हें पकड़ लिया। तब तो यह चिल्लाने लगे। कुटनी बोली, तुम्हारे पास जितने हीरे हों सब धर दो, नहीं तो वैताल न छोड़ेगा। इन बेचारे ने अपनी सारी कमाई उसे दे दी। सो यह भी मुझ से मिले। इतना सुन कोतवाल ने न्याय किया। नाइन का मूँड़ मुड़ा उसे नगर बाहर निकाल दिया। अहीरिन को बंदीघर भेजा और बनिये का धन दिलवा दिया। इसीसे मैंने कहा 'स्वर्णरेख इत्यादि'। अपने किये पर झींकना उचित नहीं (सोच के) "भाई जैसे मेल कराया है, वैसेही फूट भी करा देंगे। क्योंकि, साँच झूठ अरु झूठ सच दिखरावहिं मतिमान।

ऊँच नीच सम चित्र में चतुर चितेर समान॥"

करटक बोला, ठीक है, पर इन दोनों में बड़ा मेल है, फूट कैसे होगी ?" दमनक बोला, 'इसी का उपाय सोचना है, कहा है. बल सन सो नहिं ह्वै सकत जो करि सकत उपाय।

कौआ मार्‍यो साँप को हेमडोर ज्यों लाय॥"

करटक बोला, "कैसे ?" दमनक ने कहा, "किसी पेड़ पर कौए का एक जोड़ा रहता था। उस पेड़ की कोल में एक काला

साँप रहता था। वह उनके बच्चे खा जाता था। जब कौए के फिर अंडे देने के दिन आये तो स्त्री ने कहा यह पेड़ छोड़ दें; जब तक यह साँप है, हमारे बच्चे जी नहीं सकते।

> दुष्ट नारि शठ मित्र औ चाकर उत्तर देत।
> साँप जासु घर रहत सो त्रियत मृत्युरस लेत॥

कौआ बोला घबराओ न, हमसे भी अब सहा नहीं जाता, बहुत देखा। स्त्री बोली, काले साँप से तुम कैसे लड़ाई करोगे? कौए ने कहा, तुम इसकी चिन्ता न करो,

> क्योंकि, बुद्धिमान बलवान है बिना बुद्धि बलहीन।
> हन्यो सिंह मदमत्त को चतुर ससा एक दीन॥

स्त्री बोली 'कैसे?' कौए ने कहा। मन्दर नाम पर्वत पर दुर्दान्त नाम सिंह रहता था। वह सदा जङ्गल के जीव मारा करता था। एक दिन बन के सब जीवों ने मिलकर सिंह से बिनती की, महाराज, सब जीव क्यों मारे डालते हो? हम लोग आप के अहार के लिये नित एक जीव भेजा करेंगे। सिंह बोला जो तुम लोग चाहो। उस दिन से एक जीव उसे नित मिलता था और वह उसे मार कर खा जाता था। एक दिन एक बूढ़े खरहे की पारी आई। तब उसने सोचा—

> झुकिये भय के हेत सों जो जीवन की आस।
> विनय करौं क्यों जात मैं मरन सिंह के पास॥

तो मैं धीरे धीरे चलूँ। सिंह मारे भूख के तड़फड़ा रहा था, उसे देख कर बड़ी रिस से बोला, क्यों रे आज इतनी बेर क्यों की? खरहे ने कहा, महाराज मेरा दोष नहीं, मुझे राह में एक और सिंह पकड़े हुये था। उससे जब मैंने सौंह खाकर कहा कि अभी लौट आऊँगा तब उसने आने दिया। सिंह रिस से बोला,

चल, मुझे दिखला तो वह पाजी कहाँ है। खरहा सिंह को एक गहरे कुएँ पर ले गया और कहने लगा, आइए, देखिए और उसे पानी में सिंह की परछाईं दिखाई। सिंह मारे तेज के उसके ऊपर कूदा और पानी में डूब कर मर गया। इसीसे मैंने कहा 'बुद्धिमान बलवान इत्यादि'।

स्त्री बोली, 'यह तो मैंने सुना। कीजिएगा क्या?' कौआ बोला, पास के ताल में एक राजकुमार नित नहाने आता है। तुम उसका सोने का तोड़ा चोंच से उठाकर इसी पेड़ की कोल में रख देना। एक दिन वैसा ही हुआ, राजकुमार ने तोड़ा गले से उतार कर पत्थर पर रख दिया और ज्यों पोखरे में घुसा त्योंही कौए ने तोड़ा उठाया। उसके पीछे राजकुमार के नोकर दौड़े और ढूँढ़ते हुए तोड़े को पेड़ की कोल में देख काले साँप को मार डाला। इसीसे मैंने कहा 'बल सों इत्यादि'। करटक बोला, "जो ऐसा ही है तो जाओ काज सिद्ध करो।" इस पर दमनक पिङ्गलक के पास गया और हाथ जोड़कर बोला, महाराजा एक बड़ा अनर्थ देखकर आप को जताने आया हूँ।

क्योंकि, कीजे सारे काज नित स्वामिहि प्रथम जनाय।
बिना पूछेहू बिपति कर सेवक करै उपाय॥
काम करन को होत नहिं भोग करन को राज।
मंत्री दोषी होत है जो बिगरै कछु काज॥

मन्त्री तो ऐसे होते हैं—

प्रान जायँ बरु सिर कटै ऐसो सेवक कौन।
चहै लेन जो स्वामिपद रहि है तेहि लखि मौन॥"

पिङ्गलक आदर से बोला, "तुम क्या कहना चाहते हो? दमनक ने कहा, "महाराज, सञ्जीवक का मन आप की ओर से

बिगड़ा देख पड़ता है। वह हम लोगों के सामने महाराज की शक्तियों की बुराई करता था और कहता था कि हम राज ले लेंगे "। इतना सुनते ही पिङ्गलक दहल गया और चुपचाप बैठा रहा। दमनक ने कहा, " महाराज ने सब मंत्री छुड़ा के उसी को सब राजकाज सौंप दिया, यह बड़ा दोष है, क्योंकि,

प्रबल मन्त्रि संग लखि नरराई।
उठत राजलछिमी घबराई॥
सो तिय तेहि न भार सल लागत।
दुनहु माहिं एक सो त्यागत॥

और, एकहि मंत्रिहि जो नृप राज के काज प्रधान बनावत है।
ताहि भयो मद जो तेहि आलस्य वेगहि आय दबावत है।
भक्ति घटै मन में फिर होन स्वतंत्र की चाहहु आवत है।
द्रोह करैं नृप सों फिर तौ नृप को श्रिय बेगि नसावत है॥
और, दाँत उख्यो हिलि कै भयो सेवक भक्तिविहीन।
ताहि उखारैं वेगही सुख हित नीतिप्रवीन॥

वह सब काम अपने ही मन का करता है। इसे आप भी जानते ही होंगे, हम तो यही जानते हैं—

ऐसो को संसार में जाहि न धन की चाह।
परै सुन्दरी पै सदा लालच भरी निगाह॥"

सिंह ने सोच के कहा, ' भाई, हो जो तुम कहते हो, पर हम उसे बहुत चाहते हैं॥

देखो केतहु अहित करै तऊ हित सन घटै न नेह।
केहि प्यारो नहिं कोटिहू दोषभरी निज देह॥
और, बुरा कियेहू प्रिय रहै सोई परमपियार।
फूँकै घर पर आगि को कौन तजै संसार?"

दमनक बोला, "महाराज, यही तो बुरा है, क्योंकि,

जेहि कर आदर नृप करै, गाढ़ी प्रीति जनाय।
पुत्र मंत्रि के और कोउ, श्रिय ताके ढिग जाय॥

सुनिए, बुरे लगैं हित के बचन, पै सुख करैं निदान।
कहैं सुनैं जहँ लोग तेहि, तहँ नित है कल्यान॥

आपने पुराने जँचे लोगों को हटा के नए आनेवाले को बढ़ा दिया, यह बुरा किया।

क्योंकि, नये न सेवक राखिये भृत्य पुराने त्यागि।
भस्म करन हित राज के यहि ते प्रबल न आगि"॥

सिंह बोला, "बड़े अचरज की बात है, हमने उसे अभय किया, इतना बढ़ाया, अब यह हमारी ही जड़ खोदने को लगा है?" दमनक ने कहा "महाराज,

दुर्जन सीधा होत नहि, सेवत हूँ दिन राति।
सीधी कूकुर पूँछ कहुँ, है सकि है केहि भाँति?

और, बाँधिय कूकुर पूँछ नित, राखिय सदा भिगोय।
खोलिय बरहें बरिस पर, तऊ न सीधी होय॥
बृद्धि लहै आदर दिये, प्रीति करै नहि नीच।
फलै नहीं विषतरु सुफल, कियहु अमी को सींच॥

इसोसे मैंने कहा,

बिन पूँछेहु तेहि कहिय हित, जासु न चहिय बिगार।
यही भलन की रीति बुध, मानत है संसार॥

कहा भी है,

काज सोई, जहँ दोष न होइ, औ नेही सोई जो बिपत्ति निवारत।
सो मतिमान भले जेहि मानत, सो तिय जो पतिबात न टारत।
सो लछिमी, मद होत न जो लहि, सो हित प्रेम हिये जोइ धारत।
सोइ सुखी जेहिं चाह नहीं, सोइ मर्द जो इन्द्रिय सों नहिं हारत॥

और जो आपको सञ्जीवक रोग ऐसा लगा है और हम लोगों के जताने पर भी आप उसे न छोड़ें तो हमारा दोष नहीं।

कामी नृप समुझै न हित, गनै नहीं कछु काज।
विचरत फिरै स्वतन्त्र सो, मनहुँ मत्त गजराज॥
पुनि जब परत कुचाल बस, आपतिसिन्धु मँझारि।
दोष बतावै मन्त्रि कर आपन दोष बिसारि॥

पिङ्गलक ने अपने मन में सोचा—

दोष लगाये और के और न दण्डनजोग।
दंडैं पूजैं आपही देखि जाँचि बुध लोग॥

कहा भी है, दंडैं पूजै दोष गुन जो बिन लखे प्रकास।
देत साँप मुख हाथ सो, करन हेत निज नास॥

और बोला, "तो सञ्जीवक को धमका दें"। दमनक घबड़ा कर बोला, "जी ऐसा कभी न कीजियेगा, बात खुल जायगी। कहा है, मन्त्रबीज यह गुप्त है यहि रखिये नित गोइ।

नेकहु भेद भये तहाँ फिर जमि सकै न सोइ॥
देन लेन के काज में काजसिद्धि के हेत।
बेर न कीजै, बेर में काल तासु रस लेत॥

जो बात उठाये उसे बड़े यत्न से निबाह दे, क्योंकि,

मन्त्र छिपो चहुँ ओर सों योधा सरिस अधीर।
पर सों भेद डरत रहै एक ठाँव नहिं थीर॥

और जो किसी का दोष देखकर उसको फिर मिलाना चाहै सो और भी बुरा है।

अलग होय दुर्मित्र सों चाहत फिरि सन्धान।
अश्वतरी सम मरन को ढूँढ़त गर्भाधान॥"

सिंह ने कहा, "समझ तो लो वह कर क्या सकता है?" दमनक बोला, "महाराज,

कैसे बल निश्चय करिय बिन जाने अँग अङ्ग।
सरिपति को व्याकुल कियो देखो छुद्र बिहङ्ग॥"

सिंह बोला "कैसे ?" दमनक ने कहा "समुद्र के तीर टिटिहिरी का एक जोड़ा रहता था। जब टिटिहिरी के अण्डे देने के दिन आए तो उसने अपने जोड़े से कहा 'कहीं अण्डे देने की जगह ढूँढ़िए'। जोड़ा बोला, 'यही जगह तो अच्छी है'। वह बोली, 'समुद्र की लहरों से डूब जाती है।' उसके जोड़े ने कहा 'क्या हम उससे निबल हैं। हमारे अण्डे समुद्र कैसे बहा ले जायगा?' टिटिहिरी हँस के बोली 'तुम में और समुद्र में बड़ा अन्तर है। और नहीं तो,

दुःखबिनास उपाय जे समुक्त जोग अयोग।
कैसीहू आपति परै सम्हरत चातुर लोग॥

और,

अनुचित काज करन की चाह।
तरुनिन में बिश्वास अथाह॥
स्वजनबिरोध, बली सङ्ग रारि।
जानिय द्वार मृत्यु के चारि॥

टिटिहिरी ने अपने जोड़े के कहने से वहीं अण्डे दिए। समुद्र ने जो सुना तो टिटिहिरी का बल देखने को उसके अण्डे हर लिए। चिड़िया दुख से रोने लगी और अपने जोड़े से बोली 'हाय, मैं जो कहती थी वही हुआ, मेरे अण्डे बह गए'। उसका जोड़ा बोला, 'रोओ न, हम अभी उपाय करते हैं,' और उसने चिड़ियों को बटोरा और सब मिलकर गरुड़ के पास गए और अण्डे के हरने की बात उसे कह सुनाई। गरुड़ ने उसकी बात सुन, संसार के सिरजने पालने और मारनेवाले श्री भगवान् से कहा और भगवान् की आज्ञा से समुद्र के पास गया। तब तो समुद्र ने भी अण्डे फेर दिए। इसी से मैंने कहा "कैसे बल

इत्यादि" राजा ने कहा, "तो हम कैसे जानें उसके मन में बैर है?" दमनक बोला, "जो वह सींग झुका कर मारने को सामने खड़ा हो तब आप जान लें"। ऐसा कह कर सञ्जीवक के पास गया और धीरे धीरे चलता हुआ उसके आगे अपने को घबड़ाया हुआ सा दिखलाया। सञ्जीवक आदर से बोला, "भाई दमनक, अच्छे हो?" दमनक बोला, "पराधीन को सुख कहां? क्योंकि, परबस सुख लम्पति सकल चित्त सदा सुखहीन।

जीवन हूँ को ठीक नहिं जे नृप के आधीन॥

सम्पति पाय न गर्व भयो केहि, राजन को कहो कौन पियारो।
आपति काको सिरानी सबै, केहिको मन नारिन नाहिं बिगारो॥
काल को कौर भयो नहिं को, कब मान लह्यो कोउ माँगनहारो।
फन्द में दुष्टन के फँसि कै पुनि काको भयो जग माँहि उबारो॥

सञ्जीवक बोला, "भाई, कहो तो, बात क्या है?" दमनक बोला, "क्या कहैं—

लह्यो सर्प अवलम्ब इक डूबे सिन्धु अपार।
छाँड़ि सकै नहिं गहि सकै त्यों चित होत हमार॥

क्योंकि, सगो बन्धु एक दिस नसै इक दिन नृपविश्वास।
परो दुःख भ्रमजाल में देखि न परै निकास॥

हम तो बड़े सङ्कट में पड़े हैं।" ऐसा कह कर लम्बी साँस लेकर बैठ गया। सञ्जीवक बोला, "भाई, अपने मन की बात खोल के कहो।" दमनक ने कहा, "जो बात राजा विश्वास मान के कहै उसे खोलना अच्छा नहीं, तो भी तुम हमारे ही विश्वास से आये थे, सो हमें तो भाई परलोक का भी डर है, तुम्हारे हित की बात तुम से बिना कहे कैसे रह सकते हैं? सुनो राजा तुम से बिगड़े हैं। वह हम से एकान्त में कहते थे कि सञ्जीवक को मार के सब का पेट भरेंगे।" इतना सुनते ही

सञ्जीवक को बड़ा दुख हुआ। दमनक फिर बोला, "अजी, सोच करने से क्या होता है, अब तो अवसर आ पड़ा है। जो तुम अच्छा समझो सो करो।" सञ्जीवक सोच के बोला, देखो, किसी ने कैसा ठीक कहा है, या किसी बुरे की यह चाल हो. कुछ मेरी समझ में नहीं आता!

दुर्जन संग जाहिं फँसि नारी।
कृपन होन धन के अधिकारी॥
नृपसेवक अयोग्य बहु दरसत।
नीरद गिरि सागर बहु बरसत॥

(अपने मन में) यह इसी विचार का करतब न हो, यह भी इसी की बातचीत से नहीं जान सकते।

क्योंकि, आश्रयवस दुर्जन कबहुँ सोभा लहै अपार।
सोहै दृग तरुनीन के जैसे काजर कार॥

फिर सोचकर बोला, हा क्या हो गया! पर

नहिं अचरज जो कियहु उपाऊ।
होते नहिं प्रसन्न नरराऊ॥
यह जानिय अपूर्व कोउ देवा।
मानत बैर करै जब सेवा॥

और इसका उपाय क्या हो सकता है?

रोस करै कारन मन जोई।
कारन मिटे रीझि है सोई॥
कारन बिना करत जो रोसा।
तेहि रिझवन कर कौन भरोसा?

और मैंने राजा का क्या बिगाड़ा है? पर राजा तो योंही औरों को दुख दिया करते हैं।" दमनक बोला, "ठीक है,

कोउ तो मानत वैरि समान जो नेह जनाइ करै उपकारा।
सौंहहि एक बिगारन काज पै मानत हैं तेहि मीत पियारा।
जो न रहे थिर भाव पै एकहु ताके चरित्र को बूझनहारा?
योगिनहू की चलै नहिं बुद्धि सो सेवकधर्म अगाध अपारा॥

और, नसैं सुभाषित मूर्ख सन, नीच सङ्ग उपकार।
करैं न तो निखवन नसै, मूढ़न सङ्ग विचार॥

और, कमलनाल दोउ जल रहैं चन्दन लसै भुजंग।
गुन नासै निन नीच जन, सुख नहिं भोग अभंग॥

और, डार लसैं कपि, मूल भुजंगा।
चोटी रीछ, फूल पर भृङ्गा॥
कौन भाग चन्दन तरु माहीं।
लागे दुष्ट नीच जहँ नाहीं॥"

दमनक बोला, "राजा बातें बड़ी मीठी मोठी कहते हैं, पेट में विष धरे हैं। क्योंकि,

आसन देत बढ़ाइ निहारत प्रीति सों दूर सों हाथ उठाये।
भेटन चाहत पूँछत बात सुनै अति चाव सों ध्यान लगाये।
माया करै जब पेट धरै विष बाहर से मुख मीठ बनाये।
नाटक के यह खेल अनोखे कहो किन नीचन भूप सिखाये॥
और—दीप अँधेर निवारन को, तरिबे को महानद नाव बनाई।
वायु रुके बिजना, मदअंध गयंद को अंकुस की कठिनाई।
ऐसि नहीं जग वस्तु कोऊ जेहि की नहिं कीन्ह विरंचि उपाई।
जानि परै न चली विधि की कछु दुष्ट की चालन में चतुराई॥

सञ्जीवक ने सोचा, "हा, हम घास खाते हैं, हमें सिंह मारेगा?

धन में बल में सम रहैं तिनको उचित बिगार।
झगरा उत्तम अधम को अधमहिं करै सँहार"॥

और कुछ सोच कर बोला "राजा को हमारी ओर से किसने बिगाड़ दिया? बिगड़े राजा से डरना ही चाहिये।

मंत्री से महिपाल कर गयो चित्त जब फाटि।
फिरि बिल्लूरकंकन सरिस दुहुन सकै को साँटि?
इन्द्रवज्र नृपतेजबल अहैं दोऊ अति घोर।
एक गिरै एक ठाँवहीं दूजो चारहुँ ओर॥

तो अब उसकी सेवकाई ठीक नहीं। लड़ाई में मरने की सूरत लें।

क्योंकि, लहै स्वर्ग मरि, मारि रिपु सुखी जगत महँ होय।
सूरन के हित लोक में दुर्लभ हैं गुन दोय॥

इसी का अवसर है।

युध न किये मरिबो अवसि, लरे जियन सन्देह।
बुद्धिमान लरिजान को अवसर जानत एह॥

क्योंकि, बिना युद्ध हित ना लखै जो निज पुरुष सुजान।
तो लरिकै रिपु संग ही उजित तजब निज प्रान॥
जय पाये लछिमी मिलै मरे मिलै सुरनारि।
मरन लरन चिन्ता कहाँ तन छनभङ्गु बिचारि॥"

ऐसा सोच संजीवक बोला, "हम कैसे जानें कि वह हमें मारना चाहते हैं।"

दमनक ने कहा, "जब वह कान खड़े कर पूँछ उठाए पञ्जा बढ़ाए मुँह बाए तुम्हें देखै तो तुम भी अपना बल दिखाना।

क्योंकि, दुष्टन को को बन्धु है? माँगे को न रिसाय?
बुरे काम को चतुर नहिं? केहि मद नहिं धन पाय?

पर यह सब अपने ही पेट में रखना, नहीं तो न हम न तुम।" ऐसा कह दमनक करटक के पास गया। करटक ने कहा,

"क्या किया ?" दमनक बोला "दोनों में फूट करा दी।" करटक बोला "ठीक किया, क्योंकि,

को नहिं निदरत है जगत बलिहि तेज बिन जानि।
भवै राख रौंदत चलत बिन शङ्का मन मानि॥

तब दमनक पिङ्गलक के पास जाकर कहने लगा, "महाराज! वह पाजी आता है। आप सावधान हो जाइये।" और फिर वैसा ही उसका रूप बनवा दिया। सञ्जीवक ने जो उसका वह रूप देखा तो उसने अपना बल दिखाया। इस पर दोनों में बड़ी लड़ाई हुई और सिंह ने बैल को मार डाला। पीछे पिङ्गलक अपने सेवक को मार सोच में बैठा और बोला, "हाय! मैंने क्या किया!

क्योंकि, आप पापभाजन बनै भोग करै कोउ आन।
धर्म तजे राजा लगै गज हनि सिंह समान॥

उत्तम महि अरु मंत्रि सुजाना।
इनके नसे न नृपकल्याना॥
फिरहुँ सकिय पाइ महि खोई।
उत्तम सेवक सुलभ न होई॥"

दमनक बोला, "महाराज! यह कौन सी रीति है कि वैरी को मार कर पछताते हो। कहा है—

भाय, मित्र, कै सुत, पिता, चहै लेन जो प्रान।
ताहि बेगि राजा हनै जो चाहै कल्यान॥
जोगिनही महँ, नाथ, नित रिपु पर छमा सुहान।
अपराधिन पर नृपतिकर दोष गनो सो जात॥
क्योंकि, दया किये पर अन्न हूँ कर लै सकिय न खाय।
अर्थ काम समुक्त करै दया सदा नहिं राय॥

और, चाहैं मद के लोभ बस लेन स्वामिपद जोइ।
तासु पाप के छुटनविधि प्रानदंन हीं होइ॥

और, दण्ड देत पछिताय, तजिय सुकोमलचित नृपति।
तजियै दुष्टसहाय, सवभक्त बाम्हन तजिय॥
बस न रहै सो नारि, सेवक जो उलटा करत।
भूल करै अधिकारि, तजियै सदा कृतघ्न नर॥

और, कबहुँक साँची रहत, कबहुँ झूठो सो लागै।
कबहुँक रहै दयाल, दया कबहुँक सो त्यागै॥
कबहुँक बोलत मधुर, कठोर कबहुँ सो रहई।
कबहुँक जग हित करत, कबहुँ अनहित सो चहइ॥

नित करत खर्च बहु लखि परै, धनसंचय कबहुँक चाहत।
नृपनीति अहै पातुर सरिस नित नव रँग बदलत रहत॥"

ऐसी कपट की बातों से दमनक ने राजा को धीरा किया और सिंहासन पर बैठाया। दमनक भी "महाराज की जय हो, संसार में मङ्गल हो" ऐसा कहता हुआ सुख से बैठ गया। विष्णु शर्म्मा ने कहा "मित्रों की फूट सुनी?" राजकुमार बोले, "जी हाँ, हमको बड़ा आनन्द हुआ"। विष्णुशर्मा बोला, 'बहुत अच्छा। और,

होय हितन में फूट बस तव वैरिन को नास।
दिन दिन जग महँ दुष्ट जन होयँ काल के ग्रास॥
रहैं तुम्हारे राज में सुखसम्पति को बास।
कथा मनोहर पढ़ि लहैं सज्जन सदा हुलास॥

इति श्री अवधवासी भूपउपनाम सीताराम रचित नई राजनीति का
दूसरा भाग और हितोपदेश भाषा पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.

नई राजनीति

अर्थात्

हितोपदेशभाषा

महाकवि श्रीनारायणकृत प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ का
भाषा गद्य और छन्दों में अनुवाद
(उत्तरार्द्ध)

——:o:——

अनुवाद कर्त्ता.

श्रीअवधवासीभूपउपनाम
लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक.

नेशनल प्रेस-प्रयाग ।

सन् १९१४ ई० ।

द्वितीय बार १०००] [मूल्य ।)

PREFACE TO THE FIRST EDITION.

The first half of my Hindi version of Hitopadesa having been very favourably received, little is needed by way of preface to the remainder of the book. The subjects herein treated are War and Peace, but the instructions conveyed are as salutary and the interpolated stories as interesting as those in the first two chapters.

It may be gratifying to my countrymen who are to know something of their ancient literature through these humble productions, that Panchantantra is considered to be the oldest collection of fables which have been preserved in writing and that "the land of myth and legends, the natural home of the fable, Hindostan was the birth-place if not of all the original of these tales at least of the oldest shape in which they still exist... They must have reached Greece for many of the fables passing under the name of Æsop are identical with those of the east."*

Apart therefore from its suitability to young minds the book has a value of its own. I am also glad to see that my attempt to write simple *theth* Hindi has been commended by highest authorities and I hope the present work will be found as quite up to the mark as its predecessor.

ALLAHABAD :
15th February, 1903. } SITA RAM.

---

* Encyclopedia Britannica 9th Edition-Fables.

पहिली आवृत्ति की भूमिका

—:o:—

अवधपुरी सुखमाअवधि ता मधि स्वर्गद्वारि ।
जंगपावनि सरजू जहाँ बहति सुहावन बारि ॥
तहाँ रह्यो कायस्थ इक श्रीशिवरत्नउदार ।
श्रीरघुपतिपदकमल महँ ताकी भक्ति अपार ॥
राजनीति यह नव विरचि तासुत सीताराम ।
पूरब अर्द्ध प्रकास किय बसि दर्दरमुनिधाम ॥
शाके गुणधृति शिशिरऋतुश्रीप्रयागकरिबास ।
उत्तरार्द्ध तेहि केर अब जगहित करत प्रकास ॥

प्रयागराज,
मकर की संक्रान्ति
१९५९

सीताराम

श्रीसीतारामाभ्यान्नमः।

नई राजनीति

(उत्तरार्द्ध)

लड़ाई।

दूसरे दिन राजकुमारों ने कहा, गुरू जी हम लोग राजकुमार हैं, सो लड़ाई सुनना चाहते हैं। विष्णुशर्मा बोला, बहुत अच्छा, जो तुम्हें अच्छा लगैगा वही कहेंगे। लड़ाई की बात सुनो,

समबल हंस शिखी लरें, काग बिसास दिवाय।
बसि घर धोखा देइ पुनि, हंसन दीन्ह हराय॥

राजकुमारों ने कहा कैसे? विष्णुशर्मा बोला, "कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम एक ताल है। उस में हिरण्यगर्भ नाम राजहंस रहता था। उसे जल के सब पंछियों ने मिलकर अपना राजा बनाया। क्योंकि,

रच्छन, पालन को प्रजा जो न होइ नरनाह।
प्रजा नाव सम डाँड़ बिन परै समुद्र अथाह॥
नरपति रच्छत है प्रजा, प्रजा बढ़ावत राय।
बढ़वन रच्छन तें भलो सो बिन सबै नसाय॥

एक दिन वह राजहंस कमल के आसन पर बैठा था और उसके मंत्री दास दासी सब इधर उधर खड़े थे। उसी समय किसी देस से एक बगुला आया और हाथ जोड़, प्रणाम कर

बैठ गया। राजाने पूछा "दीर्घमुख, कहो तो, क्या क्या देख आये?" बगुला बोला "महाराज, बड़ी बड़ी बातें हैं, उन्हीं के कहने को घबराया हुआ आ रहा हूँ। सुनिये, जम्बूद्वीप में विन्ध्याचल नाम एक पहाड़ है वहाँ के पंछियों का राजा चित्रवर्ण नाम एक मोर है। मैं दग्धारण्य में फिर रहा था कि उस के सेवकों ने मुझे देखा, और पूछा" "तू कौन है कहाँ से आया है"। मैंने कहा 'मैं कर्पूरद्वीप के महाराज हिरण्यगर्भ का सेवक हूँ। देस देस देखने को बाहर निकला हूँ।' मेरी बात सुन पंछी बोले 'तुम्हें दोनों देसों में कौन सा देस अच्छा लगता है और कहाँ का राजा बढ़कर है।' मैंने कहा, 'क्या पूछते हो अकास पताल का अन्तर है। कर्पूरद्वीप स्वर्ग है और वहाँ का राजा इन्द्र ऐसा है। उसका बखान कैसे हो सकै? तुम ऊसर में पड़े क्या करते हो, आओ हमारे देस चलो।' मेरी बात सुनते ही सब के सब आग बगूला होगये।

"विषही बाढ़ै साँप को जो पियाइये दूध।
समुझाये औरहु खिझै मूरुख होय न सूध॥

और, समुझै ताहि सिखाइये, खल पै सिख नसि जाय।
घर उजराये खग लखौ बानर मूढ़ सिखाय॥"

राजा ने कहा "कैसे?" दीर्घमुख बोला, "नर्मदा के तीर पहाड़ के टेकरे पर सेम्हल का एक बड़ा पेड़ है। उस पर घोंसला बना के पंछी बरसात में भी सुख से रहते थे। एक दिन सारे अकास मे काले काले बादल छाए थे और मूसलाधार पानी बरसता था। उस समय बहुत से बन्दर जाड़े के मारे पेड़ के तले बैठे काँप रहे थे। उन्हें देख पंछियों ने कहा, अजी बन्दरो,

चुनि चुनि तृन निज चोंच सों विरचे झोंझ बनाय।
हाथ पाँव सम्पन्न तुम क्यों बैठत अलसाय॥

इतना सुन बन्दरों को बड़ा अमरष लगा। और वह बोले 'यह पंछी घोंसले में बैठे ठंढी बयार से बचे हुये हम को चिढ़ाते हैं। अच्छा पानी थम जाय तो इन्हें बतादेंगे। जब पानी बरस चुका तो बन्दरों ने पेड़ पर चढ़ के सब घोंसले तोड़ डाले। और पंछियों के अंडे नीचे गिरा दिये। इसी से मैंने कहा 'समुझै इत्यादि'।" राजा बोला. "तब पंछियों ने क्या कहा?" बगुले ने कहा, "तब वह सब बिगड़ कर बोले, 'राजहंस को किस ने राजा किया?' मैंने लाल आँखें कीं और कहा, 'इस मोर को किस ने राजा बनाया?' यह सुन सब पंछी मुझे मारने चले, तब तो मैंने भी अपना बल दिखाया। क्योंकि,

'सोहै पुरुषन में छमा ज्यों नारिन में लाज।
परिभव पावत पुरुष जब तब विक्रम को काज॥'

राजा हँस के बोला,

"आपन अरु निज शत्रु कर बल अरु अबल विचारि।
देखत अन्तर जो न तेहि सकै सहज रिपु मारि॥
चर्यो खेत बहु दिवस लों ओढ़ि बाघ की खाल।
बोल्यो गदहा मूढ़ ज्यों हनो गयो ततकाल॥"

बगुला बोला, महाराज, "सो कैसे हुआ था?" राजा ने कहा. "हस्तिनापुर में विलास नाम एक धोबी था। उसका गदहा बोझा लादते लादते दुबला हो गया और मरने लगा तो धोबी ने उसे बाघ की खाल उढ़ाकर बन के पास एक खेत में छोड़ दिया। किसान उसे दूर से देख बाघ समझ भाग गये। एक दिन एक किसान धोरी कमली ओढ़ कमठा चढ़ा

झुका हुआ एक ओर खड़ा हुआ। गदहा उसे दूर से देख गदही समझ, रेंकता हुआ उसके पास चला। किसान ने जो उसे गदहा जाना तो सहज ही मार डाला। इसी से मैंने कहा खरगो खेत इत्यादि '' बगुले ने कहा '' फिर पंछी बोले, 'क्यों रे पाजी बगुले, हमारे देस में फिरता है और हमारे राजा की बुराई करता है। तुझे छमा नहीं करेंगे।' इतना कह सब मुझे चोंचों से मारने लगे और कहने लगे 'देख रे तेरा राजा हंस तो सदा सीधा रहता है सीधे का भी कभी राज रहता है क्योंकि जो सीधा होता है वह अपने पास के धन को भी बचा नहीं सकता। वह राज कैसे करता होगा और उसका राज ही कैसा? तू कुए में मेढक ऐसा हमको सिखाता है कि उस के राज में चलो?

"सेइय फल छाया सहित तरु विशाल इक तात।
जो न होत फल दैव बस कहु छाया कहँ जात॥
करिय आसरा वड़न को नीच न सेइय तात।
दूध कलारिन हाथ में मदिरा मानो जात॥
वकरी सिंह प्रसाद से वन विचरै तजि त्रास।
लह्यो विभीषन लंकपुर रहत राम की आस॥
और, छोट परै लखि गुन बड़ो है अधार जो नीच;
महामत्त गजराज ज्यों लखिये दर्पन बीच॥
और, महाबली के नाम से सिद्ध होत सब काम।
सुखसन ज्यों खरहा रहे लिये चन्द को नाम॥"

मैंने कहा 'कैसे?' पंछियों ने कहा, 'एक बार पानी न बरसा तो सब हाथी मिलकर अपने झुंड के अगुए से बोले, हम लोगों के बचने का अब कोई उपाय नहीं है। छोटे छोटे जन्तु तो नहा सकते हैं हमारे नहाने की जगह कहीं नहीं इस से कहाँ जायँ, क्या करें?' इस पर हाथियों का राजा कुछ दूर जाकर एक

ताल देख आया। उसके पीछे हाथी झुण्ड के झुण्ड जो वहाँ गये तो ताल के तीर पर जो खरहे रहते थे उनमें बहुत से हाथियों के पैरों के तले कुचल कर मर गये। पीछे शिलीमुख नाम खरहा सोचने लगा कि जो यह झुंड नित यहाँ पानी पीने आया तो हमारे कुल का नास हो जायगा। इस पर विजय नाम एक बूढ़ा खरहा बोला, तुम दुखी न हो हम इस का उपाय किये देते हैं। ऐसा कह कर चला। राह में उसने सोचा कि हाथियों के राजा के पास कैसे जाऊँ ? क्योंकि,

छुवतहु गज के. सूँघेहु अहि के. ह्वै है मीच।
पालत हू राजा हनै हँसत हनै नर नीच॥

तो पहाड़ की चोटी पर चढ़कर राजा को प्रणाम करूँ। जब उसने ऐसा ही किया तो राजा बोला तू कौन है, कहाँ से आया है ? वह बोला, मैं दूत हूँ चन्द्रमा ने आप के पास भेजा है। राजा बोला, क्या काम है ? विजय ने कहा,

उठे रहैं हथियार तउँ दूत कहै नित साँच।
काम यथारथ कहब नित. ताहि न आवै आँच॥

तो उनका जो सन्देसा है आप से कहता हूँ। सुनिये, तुमने अच्छा नहीं किया जो चन्द्रताल के रखवारे खरहों को निकाल दिया। खरहे हमारे रखवारे हैं इसीसे हमारा नाम शशांक है। उस की बात सुन राजा डर कर बोला, महाराज मैंने अजान होके सब किया अब न जाऊँगा। दूत बोला अच्छा तो चलिये चन्द्रमा देवता ताल में रिस के मारे काँप रहे हैं उन्हें हाथ जोड़ के मनाइये। ऐसा कह खरहे ने रात को ताल के किनारे ले जाकर पानी में काँपती हुई चाँद की परछाईं दिखाई और प्रणाम करा के बोला, महाराज, इसने यह अपराध अजान हो के किया, छमा कीजिये। ऐसा कह कर बिदा किया॰। इसी से मैंने कहा

'महावली इत्यादि।' तब मैंने कहा कि, 'हमारा राजा वड़ा प्रतापी और वड़ा बली है और तीनों लोक के राज के योग्य है। इसी पर पंछियों ने मुझ से कहा, 'तू पाजी हमारे देश में कैसे घूमता है ?' और मुझे राजा के पास ले गये। और मुझे आगे कर हाथ जोड़ बोले, 'महाराज यह पाजी वगुला हमारे देश में फिरता है और महाराज को बुरा कहता है,। राजा ने कहा 'यह कौन है, कहाँ से आया है ?' उन्हों ने कहा, 'यह हिरण्यगर्भ नाम राजहंस का नौकर है कर्पूरद्वीप से आया है।' तब मुझ से गिद्ध मंत्री ने पूछा, 'वहाँ वड़ा मंत्री कौन है ?' मैंने कहा, 'सब शास्त्रों का जानने वाला सर्वज्ञ नाम चकवा है' गिद्ध वोला, वहुत ठीक है उसी देस का है। क्योंकि,

शुचि सुसील निज देस को पंडित परम कुलीन।
व्यसन रहित जग में विदित जो व्यभिचार विहीन॥
उपजावै जो अर्थ को जानत सब व्यवहार।
ऐसे को मंत्री करै राजा सहित विचार॥'

इतने में सुग्गा बोला, 'महाराज, कर्पूरद्वीप ऐसे छोटे द्वीप सब जम्बूद्वीप ही में हैं, वह भी श्रीचरणों के राज में है। इस पर राजा ने कहा, 'ठीक है'—कहा भी है।

मदमाता अरु वाल, नित प्रति करै प्रमाद जो।
धनगर्वित नरपाल, दुर्लभ हू पावन चहैं॥

तब मैंने कहा, 'जो मुँह से कहने से राज सिद्ध होता है तो जम्बूद्वीप में भी महाराज हिरण्यगर्भ का राज है। सुग्गा बोला, 'तो इसका तोड़ कैसे होगा ?' मैंने कहा, 'लड़ाई से'। राजा हँस के बोला, 'अच्छा अपने राजा को तैयार करो'। तब मैंने कहा, 'आप अपना दूत भी भेजिये।' राजा बोला, 'कौन जायगा ? दूत तो ऐसा होना चाहिये,

बोलन चतुर ढीठ ह्वै जोई।
गुणी भक्त जेहि संक न होई॥
जानि लेइ जो परमनमर्मा।
करै सो विप्र दूतकर कर्मा॥

राजा बोला, 'अच्छा तो सुग्गा ही जाय। सुग्गे! तुम इसके साथ जाओ और हमारी आज्ञा उस राजा से कहो'। सुग्गा बोला 'जो महाराज की आज्ञा. पर यह बगुला दुष्ट है। कहा भी है–दुष्ट करैं अपराध अरु सन्त लहैं फल भोग।
सीय हरी रावन, भयो सागर बाँधन जोग॥
रहिये नहिं चलिये नहीं दुष्ट संग सब काल।
काग संग चलि बक नस्यो रहि सँग नस्यो मराल॥'

राजा बोला। 'कैसे?' सुग्गे ने कहा, 'उज्जयिनी की सड़क पर एक बड़ा पीपल का पेड़ है। उस पर एक हंस और एक कौआ दोनों रहते थे। गर्मी के दिनों में एक बटोही उस पेड़ के नीचे कमठा रखकर सो गया। थोड़ी देर में उसके मुँह पर से पेड़ की छाँह जो हटी तो सूर्य की ज्योति पड़ते देख हंस ने पेड़ के ऊपर से दया के मारे पंख फैलाकर छाँह कर दी। बटोही राह का थका, गाढ़ी नींद सोया और जागा तो उसने जम्हाई ली। कौआ तो जनम का चंचल होताही है, बटोही के मुँह में बीटकर भाग गया। बटोही ने उठकर ऊपर जो देखा, तो हंस को बान मारा और हंस मर गया। इसी से मैंने कहा रहिये नहिं इत्यादि,

क्योंकि, संगति करु नित साधु की दुर्जन सग नित त्यागु।
जग की चेत अनित्यता पुण्य काम में लागु॥

और बत्तक की बात सुनिये। पहिली ठहरने की हुई। अब चलने की सुनिये। एक कौआ एक पेड़ पर रहता था और बत्तक

उसके नीचे । एक दिन सब पंछी गरुड़ की यात्रा को समुद्र के तीर जाते थे। बत्तक भी कौए के साथ चला। राह में एक ग्वाला दही लिये जाता था उसकी मटकी में से कौआ बार बार दही खाया करता था। ग्वाले ने मटकी उतार ऊपर देखा तो कौआ भाग गया। बत्तक धीरे धीरे चलता था उसे उसने सहज ही मार डाला। इसी से मैंने कहा चलिये 'नहीं इत्यादि ।' तब मैं बोला, 'भाई सुग्गे तुम ऐसा क्यों कहते हो हमारे लेखे जैसे महाराज तैसे तुम ' 'सुग्गा बोला 'ठीक है पर

'बोलत मीठे बैन खल कछु बनाय मुसुकाय।
सुनि अकाल के फूल ज्यों लखि मो हियो सकाय॥

और तुम्हारा बुरा होना तो तुम्हारी बातों से खुल गया. क्योंकि तुम्हारी बातों ही ने दो राजाओं में लड़ाई करा दी।

रीझे बातन मूढ़ मति सौंहेहु दोष निहारि।
यार सहित निज सिर धस्यो ज्यों बढ़ई निज नारि'॥

राजा ने पूछा 'कैसे ?' सुग्गा बोला 'श्रीनगर में मन्दमति नाम एक बढ़ई रहता था। वह अपनी जोरू को जानता था कि छिनाल है। पर उसने कभी उसे यार के साथ पकड़ न पाया। एक दिन बढ़ई घर से यह कह कर चला कि मैं दूसरे गाँव जाऊँगा पर कुछ दूर चल कर लौट आया और अपने घर में खाट तले पड़ गया। उसकी जोरू ने समझा कि बढ़ई तो दूसरे गाँव गया और उसने साँझ ही से अपने यार को बुलाया और उसी खाट पर यार के साथ चैन करने लगी। इतने ही में उस छिनाल को बढ़ई के खाट के नीचे होने की आहट मिली, और नीचे जो देखा तो उसे पहिचान कर घबड़ा गई । तब उसका यार बोला, आज क्यों तेरा जी नहीं लगता ? क्यों घबड़ाई सी है ? वह बोली, आज मेरे प्राणनाथ दूसरे गाँव गये हैं उनके

बिना भरा पुरा गाँव भी सूना सा लगता है । क्या जाने वहाँ क्या खाया होगा ! कैसे सोये होंगे ? यह समझ समझ मेरा जी घबड़ा रहा है । यार बोला तू उसे इतना चाहती है वह तो तुझसे लड़ा करता है । बढ़इन बोली, अरे तू क्या बकता है, सुन–

लखो क्रोध की डीठि से बोली हू दै गारि ।
पति से रहै प्रसन्न जो पुण्यवती सो नारि ॥
पापी कै धार्मिक रहे बन में रहे कि गाँव ।
पति प्यारो जेहि नारि को ताको सुख सब ठाँव ॥

तू यार है कभी मन चला तो फूल पान ऐसा तुझे भी रख लिया । वह हमारे स्वामी हैं चाहे हमें बेच डालें चाहे ब्राह्मण को दे दें । कहाँ तक कहें हम तो उन्हीं के जीते जीते हैं उनके मरे मर जायँगे ।

क्योंकि–साढ़े तीन करोर हैं रोयें नर की देह ।
सती स्वर्ग एते बरिस रहि हैं बिन संदेह ॥
पकरि सपेरा साँप ज्यों काढ़ै बिल सन धाय ।
काढ़ि नरक सन त्यों पतिहिं सती स्वर्ग ले जाय ॥
चिता बैठि मृतपतिहिय लागत ।
जो प्रिय नारि प्रान निज त्यागत ॥
कीन्हेहु पाप अनेकन भारी ।
पति सँग होत स्वर्गअधिकारी ॥

बढ़ई यह सब सुन कहने लगा, मैं धन्य हूँ जो मेरी ऐसी जोरू है और खाट को अपने सिर पर उठा कर नाचने लगा । इसी से मैंने कहा रीझै बातन इत्यादि ।

इसके पीछे राजा ने मुझे भेंट दिलवा कर बिदा किया । सुग्गा भी पीछे आता ही होगा । यह बात है । जो उचित जान

पड़े कीजिये" चकवा हँस के बोला, "महाराज, बगुले ने परदेस जाके अच्छा राजकाज किया। मूर्खों का काम यही है,

सहस देइ झगरै नहीं कबहुँक पुरुष सुजान।
बिन कारन झगरा करब मूरख की पहिचान॥"

राजा बोला, "अब तो जो होना था सो हो गया अब करना हो वह सोचो।" चकवा बोला, "महाराज, एकान्त में कहूँगा।

मुखविकार पहिचानि, धुनि सुनि, वर्ण अकार लखि।
चतुर लेत सब जानि, कीजिये मंत्र इकंत में॥"

इतना सुनते ही सब बाहर चले गये, राजा और मंत्री रह गये। चकवा बोला, "महाराज, मुझे जान पड़ता है कि बगुले ने यह सब किसी के उसकाने से किया है। क्योंकि,

रोगी देखि वैद्य सुख लहहीं।
लती स्वामि आश्रित नित चहहीं॥
संत जियें सज्जन आश्रित रहि।
पंडित जियें धनी मूरुख लहि॥"

राजा बोला "इसका कारण पीछे सोच लेंगे अब करना हो सो कहो।" चकवा बोला, "महाराज, एक दूत भेजिये जिससे यह तो जानें कि वहाँ क्या तयारी है और पलटन कैसी है। कहा है,

काज अकाज लखन विषय, अपने रिपु के धंध।
चर राजा के नयन हैं जाके नहिं सो अंध॥

तो वहाँ कोई और जाना सुना साथी लेकर जाय। आप तो वहीं ठहर जाय और दूसरे को वहाँ के भीतर की सब बात जान के यहाँ भेज दे। कहा है,

देवालय औ तीर्थ में तपस्वी भेस बनाय।
शास्त्रज्ञान मिस चरन सों भेद लेइ नरराय॥

भेदिया वही जो जल थल दोनों में चल सके । तो उसी बगुले को भेजिये । ऐसा ही कोई बगुला उसके साथ जाय और उसके घर के सब लोग राजद्वार पर रहैं । पर महाराज यह भी बहुत छिपः के करने की बात है,

क्योंकि, छः कानन में जो गई ताहि सबै सुनि लेत ।
करै मंत्र नरपति सदा इक जन सँग यहि हेत ॥
भेद खुले सों होत है जो नरपति की हानि ;
सो सुधरै नहिं कोटिहू करै जतन नर ज्ञानि ॥"

राजा सोच के बोला, "हमैं तो एक दूत मिला"। मंत्री ने कहा "तो महाराज, लड़ाई में आप को जीत भी होगई।" इतने में प्रतीहार आया और हाथ जोड़ बोला, "महाराज, एक सुग्गा जम्बूद्वीप से आया है और बाहर खड़ा है।" राजा ने चकवे का मुँह देखा। चकवा बोला, "ले जाओ डेरे में थोड़ी बेर में लाना।" प्रतीहार बोला, "जो महाराज की आज्ञा" और उसने सुग्गे को ले जाकर डेरे में उतारा। पीछे राजा ने कहा, "लड़ाई तो आगई" मंत्री ने कहा "महाराज तो भी एकाएकी लड़ाई कर बैठना ठीक भी नहीं है।"

धिक सो मंत्रि सेवक सो धिक जो विचारि नहिं लेइ ।
भूमि तजन अरु युद्ध की सीख स्वामि कहं देइ ॥

और, युधकरि रिपु जीतन चहब नहिं चतुरन की नीति ।
का जनान है युद्ध में काकी निश्चय जीति ॥
साम दान अरु भेद से कै तीनहु एक साथ ।
रिपु, साधिय लरिकै चहिय रिपु जीतन नहिं नाथ ॥

क्योंकि, समर भूमि देखे बिना जग में सब कोउ सूर ।
पर बल जौ लौं नहिं लखै सब के होत गरूर ॥

हटै न सिल दस जन लगे उठै सो बाँस लगाय ।
बहै मंत्र कारज बड़ा सधै जो छोट उपाय ॥

पर लड़ाई तो सिर पर आगई अब यह कीजिये,

क्योंकि—अवसर के उद्योग सन ज्यों फल लहै किसान ।
नीतिचाल सन सिद्ध त्यों लहैं सदा मतिमान ॥
डरै बड़े सन दूर रहि, सोहैं बनै सो वीर ।
यह लक्षण हैं बड़न के, रहैं बिपति महँ धीर ॥
पहिले को उत्ताप है सिद्ध बिघ्न निरधार ।
ठंढे जल हूँ से सदा कै नहिं फटैं पहार ॥

और राजा चित्रवर्ण बड़ा बलवान है । क्योंकि,

यह न नीति कीजै कबहुँ बली शत्रु सन रारि ।
नर हाथी के युद्ध में नरही की नित हारि ॥

और, सो मूरख अवसर न लखि बनै जु रिपुअपकारि ।
चींटी के पख सम अहै त्वहन बली सन रारि ॥

क्योंकि-अंग सिकोरि कछुआ सरिस रिपु के सहै प्रहार ।
समय देखि चातुर करै उठि अहि सम फुंकार ॥

सुनिये, बड़ा छोट साधत सबै जानत नीति उपाय ।
ज्यों तृन तरु दोहून को सरिजल ढाहत जाय ॥

इसी से इस सुग्गे को फुसला कर यहाँ ठहराइये और गढ़ ठीक कर लीजिये । क्योंकि,

इक सौ, सन, सौ सहस सन लड़ैं कोट चढ़ि बीर ।
यहि सन दुर्ग बनाइबो उचित कहैं मति धीर ॥
बिना दुर्ग सब को रहै अपने ऊपर दाव ।
बिना दुर्ग राजा लगै ज्यों माझी बिन नाव ॥
गहरी खाई दुर्ग में करिये ऊँचो कोट ।
यंत्र धरिय जल शैल की बन की कीजे ओट ॥

फैलो. विषम प्रवेश औ भागन को सब घात।
धारत इंधन अन्न जल ये गढ़ के गुन सात॥"

राजा ने कहा "गढ़ बनवाने में किस को लगावें?"
चकवा बोला।

जो चतुरो जेहि काज तहँ ताहि लगावै राय।
कियो नहीं जो काम तहँ पंडित हू घबराय॥

तो अब सारस को बुलाइए। सारस जो आया तो राजा ने कहा. "सारस तुम तुरन्त ही गढ़ ठीक कर लो"। सारस हाथ जोड़ कर बोला, "महाराज' गढ़ तो पहिले ही का देखा सुना है एक बड़ा ताल है अब उस में खाने पीने को अनाज पानी सब भर लेना चाहिए। क्योंकि,

संचय बहु, पै अन्न के संचय सम नहिं आन।
हीरा मोती मुँह धरै रहैं न छिन हूँ प्रान॥

और, जेते रस संसार में नोन सरिस नहि कोइ।
तेहि धरिए ताके बिना भोजन गोबर होइ॥"

राजा ने कहा "अच्छा अभी जाके सब काम ठीक करो"। इतने में प्रतीहार ने आकर कहा, "महाराज, मेघवर्ण. नाम कौओं के राजा सिंहलद्वीप से आये हैं, और प्रणाम करते हैं श्री चरण के दर्शन करना चाहते हैं। राजा ने कहा, "कौआ बड़ा समझदार और बुद्धिमान् होता है उसे भी मिला लेना ही चाहिये।" चकवा बोला, "ठीक है पर थल पर रहने वाला हमारा वैरी है। उसका काम तो हमारे साथ वैर का है। उसे कैसे मिलावें?

क्योंकि—रहै और के संग जो आपन पच्छ बिहाय।
रँगे सियार समान सो रिपु सन मारो जाय॥"

राजा ने कहा, "कैसे ?" मंत्री बोला, "महाराज एक दिन एक सियार नगर के पास फिरता हुआ नील की नाँद में गिर पड़ा। उससे निकल न सका तो सवेरे मरा ऐसा बन गया और रंगरेज ने उसे निकाल दूर ले जाकर फेंक दिया। सियार उठ कर बन को चला और अपना रंग नीला देखकर सोचने लगा कि अब मेरा ऐसा रंग हो गया है तो अपना बहुत कुछ भला कर सकता हूँ। ऐसा सोच विचार, सब सियारों को बुलाकर बोला, 'हमें बन के देवताओं ने ओषधियों के रस में नहला कर बन का राजा बनाया है। देखो हमारा रंग कैसा है ? आज से इस बन में राज काज हमारे ही हुकुम से होगा'। सियार उसकी बात सुन और उसका रंग देख उसके पाँव पड़े और कहने लगे, 'महाराज की जो आज्ञा हो'। इसी रीति से उसने सारे बन के जीवों पर अपना राज जमाया और अपनी जाति वालों के बीच बैठा हुआ सब से बढ़कर रहने लगा। जब उसे बाघ और सिंह सेवकाई को मिले तो उसे सियारों को देख लाज आने लगी और उसने सब को निकाल दिया। सियारों को दुखी देख एक बूढ़े सियार ने कहा, 'तुम सब मत घबड़ाओ इसने बड़ी भूल की है जो अपने भेद जानने वालों का निरादर किया। अब हम वह करेंगे जिसमें इसका नास हो। रंग ही से धोखा खाके इसे बाघ बाघ सब राजा मानते हैं। अब ऐसा करो जिससे यह पहिचान लिया जाय। तो अब यह करो कि आज साँझ की बेर उसके पास जाकर बड़ा हल्ला करो। हम लोगों की बोली सुन वह भी बोलने लगेगा, क्योंकि,

जो सुभाव जाको न सो किये जतन सत जाय।
कूकुर कीजै राउ तो पनही पकरि चबाय॥

बाघ जैसे बोली से पहिचान लेंगे वैसे ही उसे मार ही डालेंगे। और वैसा ही हुआ। कहा भी है,

जानि तेहिं बैरी सकल जाके बल बुधि चाल।
तरु कोटर की आगि सम नासैं तेहि ततकाल॥

इसीसे मैंने कहा, "रहै और के संग इत्यादि।"

राजा बोला, "अच्छा तो यह भी तो देखो वह दूर से आया है उससे मिलने का विचार करना चाहिये।" चकवा बोला "महाराज दूत भेजा गया और गढ़ सँवार लिया। अब सुग्गे को भी बिदा कीजिये। पर,

चानक मार्यो नन्द को पठै दूत अति क्रूर।
बीरन संग यहि मन लखिय दूत राखि कछु दूर॥"

इस पर सभा करके उसने कौआ और सुग्गा दोनों को बुलाया। सुग्गे ने प्रणाम किया, और आसन पर बैठ कर बोला "हिरण्यगर्भ तुमको श्रीराजाधिराज श्रीमान चित्रवर्ण ने आज्ञा दी है, कि तुम्हें प्रान धन की चाह हो तो तुरन्त ही आकर हमारे पावों पड़ो, नहीं तो देस छोड़ चले जाओ।"

इतना सुनते ही राजा ने आँखें लाल करके कहा "हमारी सभा में ऐसा कोई नहीं है जो इसकी गर्दन नापै।" मेघवर्ण उठकर बोला महाराज मुझे आज्ञा हो तो इस पाजी सुग्गे को मार डालूँ।" मंत्रीने कहा, "न भाई न, सुनो।"

सभा न सो जहँ बूढ़ न रहहीं।
नहिं सो बूढ़ जो धर्म न कहहीं॥
नहिं सो धर्म जहँ साँच न होई।
डर बस दबै साँच नहि सोई॥

धर्म यह है, दूतहि राजा को मुख मानहु।
दूत अबध्य मलेच्छहु जानहु॥

यद्यपि उठे रहैं हथियारा ।
दूत यथारथ भाषन हारा ॥
और निज हेठी मानै नहीं दूत वचन सुनि लोग ।
सब कुछ कहि डारैं तऊ दूत नहीं वधजोग ॥"

तब राजा और कौआ दोनों धीरे हुए । सुग्गा भी उठकर चला । पीछे चकवा मंत्री ने उसे समझा बुझा भेंट देकर बिदा किया । और वह अपने देस विन्ध्याचल को गया और राजा चित्रवर्ण के पास पहुँच कर उसके पाँवों पड़ा । उसे देख राजा बोला, " कहो सुग्गे क्या कर आए? कैसा देस है ? सुग्गा बोला, महाराज, सीधी बात यह है कि लड़ाई की तयारी कीजिये कर्पूर-द्वीप देस स्वर्ग ऐसा है । उसका बखान नहीं हो सकता। "राजा ने सब सभा के लोगों को बुलाकर सलाह ली और बोला, " भाई अब जो करना हो सो करो । लड़ाई तो करनी ही है ।

कहा भी है-गे सन्तोष विहीन द्विज सन्तोषी महाराज ।
कुलतिय छाँड़े लाज गइ गनिका कीन्हे लाज ॥"

दूरदर्शी गिद्ध बोला, "महाराज अनायास लड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि, अचलभक्त जाके रहैं मंत्री मित्र सहाय ।
रिपु से रहैं मिलै न तौ करै युद्ध नरराय ॥
भूमि मित्र धन लाभ ये लड़िबे के फल तीन ।
एकहु मिलै ज़रूर तो लड़ि है पुरुष प्रवीन ॥"

राजा ने कहा " मंत्री तुम पल्टनें जाँच लो देखो काम की हैं और पंडित बुला के साइत पूछ लो । मंत्री ने कहा, " महाराज तो भी एकाएक चढ़ाई करना ठीक नहीं ।

क्योंकि-लड़ि बैठत जे मूढ़ मति रिपुबल बिना विचार ।
ते नर अवसि नहात हैं प्रबल खड्ग की धार ॥"

राजा ने कहा "मंत्री देखो तुम हमारा उत्साह न बिगाड़ो अब वह सनाह दो जिस से वैरी के देस में जीत हो"। गिद्ध बोला, "महाराज, वही तो कहता हूँ। पर जिससे फल हो वही तो करना चाहिए। कहा है,

व्यर्थ ज्ञान सब, जो चलैं नीतिचाल नहिं लोग।
औषध जाने ही नहीं मिटैं देह को रोग॥

पर राजा की आज्ञा तो टल नहीं सकती इसी से कहता हूँ सुनिए,

नदी शैल बन दुर्ग में भय जेहि ठाँव लखाय।
सेनहि व्यूह बनाय तहँ सेनापति लै जाय॥
बलपति आगे ही चलैं वीर संग कछु लेइ।
पीछे सेना बीच में स्वामि कोश करि देइ॥
अगल बगल घोड़े रहैं फिर राखैं रथ पाँति।
रथन पास हाथी चलैं पीछे चलैं * पदाति॥
पीछे सेनापति चलैं थकेन दिलासा देत।
मंत्रि सुवीरन संग पुनि नरपति चलैं सचेत॥
विषम भूमि जल सैल की तहँ हाथी लै जाय।
सम थल पै घोड़े चलैं पैदल सब दिसि राय॥
बड़े काम के गज रहैं जब ऋतु है बरसात।
और समय घोड़े चलैं पैदल सब दिन जात॥
रक्षा चौकस राखिये शैल गढ़न की राह।
योगनींद सोवै सदा पहरेहु में नरनाह॥
नासैं मारै रिपुन को काँटन खैंचि नरेस।
बनवासिन आगे करै चलै जु रिपु के देस॥
जहँ राजा तहँ कोश है, बिना कोश नहिं राज।
धन दीजै निज सैनिकन, को न लड़ै धन काज?

* पैदल।

क्योंकि–नर को नर नहिं दास है, हैं सब धनके दास ।
बड़े छोट सब जगत में धनबस लखिय प्रकास ॥
इक इक की रक्षा करत लरिय इकट्ठा होय ।
व्यूह बीच ही राखहीं फल्गु सेन बुध लोय ॥
पैदल को आगे करै रन में नृप रनधीर ।
चारहु दिसि सों घेरि पुनि पारै रिपु पर भीर ॥
रथ हय चढ़ि सम भूमि में करै युद्ध नरनाह ।
जल थल गज अरु नाव चढ़ि लड़ै समेत उछाह ॥
पेड़ कुंज परिजाय तो साधै सायक चाप ।
चौरस में तरवार सों नासै रिपु के दाप ॥
इंधन पानी घास सब रिपु के देइ बिगारि ।
तोरै खाई कोट और काटि बहावै वारि ॥
सारी सेना में रहै सब से प्रबल मतङ्ग ।
आठ अस्त्र निज देह में धारै गज इक सङ्ग ॥
घोड़े जंगम कोट से सेना की चहुँ ओर ।
यहि हित नृप, थल युद्ध में घोड़े रहैं न थोर ॥
कहाभीहै–लड़ैं अस्व चढ़ि जो, तिनहिं देवहु को नहिं त्रास ।
दूरहु के वैरी तिनहिं लागैं ठाढ़े पास ॥
सगरी सेन सँवारिबो युधि को पहिलो काज ।
राह सुधारै आदिहो पैदल के हित राज ॥
बल सोइ उत्तम गनिय, जो है स्वभाव से सूर ।
थकै न श्रम से, भक्त है, अस्त्रज्ञान से पूर ॥
प्रभु सन आदर पाय जो जन अर्पत लड़ि प्रान ।
दीन्हे धन के नहिं लड़ैं त्यों योधा बलवान ॥
थोरी ही सेना बली अबल व्यर्थ है भीर ।
कायर संग बलवानहूँ रन महँ रहै अधीर ॥

अवसर उचित बिताइबो देन होय सो लेन ।
प्रतीकार नहिं करन तें बिगरि जात है सैन ॥
नहिं दायाद समान कोउ बैरी नास उपाय ।
यहि हित रिपुदायाद को फोरि लेइ नरराय ॥
मंत्री कै युवराज संग तुरत करै संधान ।
चढ़े भूप की सेन को चित फोरै मतिमान ॥
फोरि मित्र को समर में लरिकै कीजै नास ।
कै वा फंद फसाइ के खैंचिय अपने पास ॥
देस शत्रु को घेरिकै रक्षै नृप निज राज ।
निज रक्षा दृढ़ करन में दान मान को काज ॥"

राजा ने कहा, "बहुत बात करने का कौन काम है ?

निज बढ़ती रिपुहानि यह दोऊ नीति की बात ।
इन दोहुन को समुझि कै सब पंडित बनि जात ॥

मंत्री हँस के बोला, "महाराज सब सच है पर,

एक शास्त्र विधि सन चलब इक स्वतंत्र पुनि चाल ।
तेज तिमिर सम नहिं रहैं एक ठाँव एक काल ॥"

राजा ठीक साइत पर सवार हुआ। यहाँ दूत ने एक भेदी भेजा था सो हिरण्यगर्भ के पास आकर, हाथ जोड़ बोला, "महाराज राजा चित्रवर्ण पहुँच गया। आज उसका डेरा मलय पहाड़ के नीचे पड़ा है, सो आप छन छन अपने गढ़ की चौकसी कीजिये क्योंकि उसके साथ गिद्ध महामन्त्री है वह एक दिन बातें करता था मुझे अटकल से जान पड़ा कि उसने हमारे गढ़ के भीतर किसी को टिकाया है।" चकवा बोला "महाराज कौआ ही है" राजा ने कहा, "ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐसा होता तो सुग्गे को मारने चलता और जब से सुग्गा आया तब से लड़ाई करने को कौआ तयार है। और ,यहाँ बहुत दिन से

है भी।" मंत्री बोला, "महाराज तो भी नये आये हुए से जी नहीं भरता।" राजा ने कहा "आने वाले पराये लोग भी बड़ा काम करते हैं। सुनो,

बनैं पराये कबहुँ हित अहित होत निज गोत।
अहित देह को रोग है बनबूटी हित होत॥
चाकर थोरे दिनन को करि सुत को बलिदान।
भयो उरिन निज नाथ सन तासु बचाये प्रान॥"

चकवे ने पूछा, "कैसे!" राजा बोला, "बहुत दिन हुए हम राजा शूद्रक के पोखरे में कर्पूरबलि नाम राजहंस की बेटी कर्पूर मञ्जरी के साथ बिहार करते थे। वहाँ बीरबर नाम एक राज-कुमार आया और राजदुआर पर दुआलबन्द से बोला. 'हम छत्री राजकुमार हैं नौकरी चाहते हैं हमारी राजा की भेंट करा दो।' जब दुआलबन्द उसे राजा के पास ले गया तो वह बोला. 'जो मुझे नौकर रखने का काम हो तो मेरा महीना कर दीजिये।' राजा बोला, 'क्या लोगे?' उसने कहा 'चार सौ मोहर नित साँझ को लूंगा'। राजा ने कहा, 'तुम्हारे साथ साज क्या है?' वह बोला, 'दो हाथ, तीसरी तलवार।' राजा ने कहा 'हमैं काम नहीं।' इतना सुनते ही बीरबर माथ नवा कर चला, तो मंत्रियों ने कहा, 'महाराज, इसे चार दिन रख कर देख तो लीजिये, इतना लेगा कुछ काम भी करैगा। मंत्रियों के कहने से राजा ने उसे फिर बुलाया और उसे बीड़ा दिया।

राजा ने छिप छिप कर यह भी देखा कि यह चार सौ मोहर लेकर क्या करता है। आधा तो उसने देव ब्राह्मणों को बाँट दिया जो बचा उसका आधा दीन दुखियों में बाँट दिया। बचा उसे खाया पकाया। यही नित करता और तलवार हाथ में लिये दिन रात राजा के दुआर पर खड़ा रहता था। जब राजा आप

कहता तो अपने घर जाता। एक दिन अँधेरे पाख की चौदस को राजा को किसी का रोना सुनाई दिया। उसे सुन राजा ने कहा, 'कोई है फाटक पर?' उसने कहा, 'महाराज, मैं हूँ, बीरबर।' राजा ने कहा, 'देखो कौन रोता है!' बीरबर ने कहा, 'जो महाराज की आज्ञा' और चल खड़ा हुआ। राजा ने सोचा 'हमने अच्छा नहीं किया जो अँधेरे में इस राजकुमार को अकेला भेज दिया। हम भी चल कर देखें यह कौन है' ऐसा सोच राजा भी तलवार ले उसके पीछे नगर के बाहर निकल गया। बीरबर ने आगे जा कर देखा कि एक जवान स्त्री नखसिख से सुन्दर गहने कपड़े पहने खड़ी रो रही है। बीरबर ने पूछा, 'तुम कौन हो और क्यों रोती हो।' स्त्री बोली, 'मैं राजा शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ। बहुत दिनों तक इनकी बाँहों की छाँह में सुख से रही अब देवी राजा से रिसा गई है सो आज के तीसरे दिन राजा मर जायँगे और मैं अनाथ हो जाऊँगी। इसी से रोती हूँ।' बीरबर ने कहा, 'तो अब आपका रहना कैसे हो सकता है?' लक्ष्मी बोली, 'जो तुम अपने बेटे शक्तिधर का सिर भगवती मंगलादेवी को अपने हाथ से काटकर चढ़ा दो तो राजा सौ बरस जियें और मैं सुख से रहूँ।' ऐसा कह कर वह तो अन्तरधान हो गई और बीरबर ने अपने घर जा कर अपनी स्त्री और लड़के को जगाया। दोनों जागे तो बीरबर ने लक्ष्मी की सारी बात उनसे कह सुनाई। शक्तिधर सुन के बोला 'मैं धन्य हूँ जो स्वामी के काम आता हूँ। तो अब देर न कीजिये क्योंकि शरीर का ऐसे काम में लग जाना अच्छा है।' शक्तिधर की माँ बोली 'हमारे कुल के लिये यही ठीक है' जो ऐसा न करोगे तो राजा का धन जो खाया है उसका रिन कैसे चुकैगा।' ऐसा सोच सब मंगला के मंदिर को गये। वहाँ मंगला की पूजा कर

बीरबर बोला, 'देवी दया करो, महाराज शूद्रक की जय हो : यह भेंट लीजिये ।' ऐसा कह कर उसने अपने लड़के का सिर काट डाला । तब बीरबर ने सोचा, 'राजा से तो उरिन हो चुका अब बिना बेटे के जीना भी अकारथ है' और उसने अपना भी सिर काट डाला । स्त्री ने भी बेटे और पति के सोच में अपने तलवार मार ली । यह सब चरित्र देख राजा को बड़ा अचरज हुआ और उसने सोचा,

> क्षुद्र जन्तु उपजें मरें जग महँ मोहि समान ।
> अहै नहीं ह्वैहैं नहीं जन यहि सरिस सुजान ॥

यह नहीं है तो राज लेकर क्या करेंगे । ऐसा कहकर शूद्रक ने भी अपना सिर काटने को तलवार निकाली । इस पर भगवती मंगला देवी ने प्रगट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया औ कहा, 'बेटा, यह क्या करते हो । तुम्हारा राज अचल हो गया ।' राजा ने दंडवत करके कहा, 'देवी मुझे न राज का काम है न जीने का । जो आप मुझ पर दया करें तो मेरी आयु जितनी बची हो उससे स्त्री लड़के समेत यह राजकुमार जियें । नहीं तो मैं भी इन्हीं की राह चलता हूँ । देवी ने कहा, ' तुम्हारी सचाई और सेवक की चाह देख कर हम बहुत प्रसन्न हैं, जाओ, तुम्हारी जय हो, यह राजकुमार भी स्त्री पुत्र समेत जियेगा ।' इस पर बीरबर स्त्री पुत्र समेत उठ खड़ा हुआ और अपने घर गया । राजा भी उनके बिना देखे महल में जाकर सो रहा । थोड़ी देर में फिर बीरबर को बुलाकर पूँछा तो वह बोला महाराजा कुछ नहीं था एक स्त्री रोती थी मुझे देख न जानें कहाँ चली गई" उसकी बात सुन राजा को बड़ा अचरज हुआ और अपने मन में कहने लगा' 'इस महापुरुष की बड़ाई बखानी नहीं जा सकती । क्योंकि,

सोइ सूर निज गुनन को जो नहिं करै बखान।
सो दाता जो देइ नहिं कबहुँ कुपात्रन दान॥

यही महापुरुष के लच्छन हैं। इस में सब गुन हैं दूसरे दिन राजा ने एक बड़ी सभा की और सब ब्योरा सुना कर बीरबर को करनाटक का राज दिया। तो क्या नये आने ही से बुरा हो गया इन में भी तो ऊँच नीच होते हैं।" चकवा बोला.

'धिक', नृप इच्छा जानि, सिखवै करन अकाज जो।
भलो न ताकी हानि, स्वामि रूसिबो है भलो॥
गुरू बैद अरु मंत्रि को जो राखै प्रिय जानि।
तासु धर्म तन, कोश की कबहुँ होत नहिं हानि॥
लह्यो एक जो भागि सन, लहिहौं, सोचत जोइ।
ताकी जोगी मारि कै नाई की गति होइ॥

राजा ने पूछा, "कैसे"। मंत्री ने कहा, 'अयोध्यापुरी में चूड़ामणि नाम एक छत्री रहता था। उसने धन के लिये बड़ा दुख सहकर महादेव जी की पूजा की, इस पर उसके पाप छूट गये और रात को भगवान् ने उसे दर्शन देकर कहा, 'तुम आज सवेरे बाल बनवा कर लाठी ले अपने दुआर पर खड़े रहना; जो भिखमंगा सामने आवै उसे इतना मारना कि वह मर जाय। वह भिखमंगा सोने का कलसा बन जायगा. उसी से तुम जनम भर सुखी रहोगे।' छत्री ने भी वैसा ही किया। नाई ने जो यह देखा तो सोचने लगा कि धन पाने का यही उपाय है, मैं भी ऐसा ही क्यों न करूं। ऐसा विचार कर उसी दिन से नाई भी भिखमंगे की राह देखता रहा। एक दिन उसने एक मंगते को लाठी से मार डाला इस पर उसे कोतवाल ने पकड़ कर सूली चढ़ा दी। इसी से मैंने कहा "लह्यो इत्यादि"। राजा बोला,

पहिले की बातैं सुमिरि क्यों करिये परतीत ।
है बिसासघाती कि सो है बिन कारन मीत ॥

अब जो हुआ सो हुआ । अब जो करना हो सो करो। चित्रवर्ण राजा मलय पर्वत के नीचे उतरा है, अब क्या करना चाहिए । ' मंत्री बोला, ' महाराज, मैं ने दूत के मुँह से सुना है कि चित्रवर्ण ने महामंत्री गिद्ध का कहना नहीं माना है इसी से उसका जीतना कोई बड़ा काम नहीं है,

कहा है, लोभी झूँठा आलसी चूकै और डेराय ।
क्रूर मूढ़ चंचल रिपुहि सहजहि सकिय हराय ॥

तो जब तक वह हमारा गढ़ न घेर पावै उसकी पल्टनों को पहाड़ और बन की राहों में काट डालने के लिये सारस और और सेनापतियों को भेज दीजिए ।

कहा है, व्याकुल भूख पियास से फँसो नदी बन सैल ।
डरत भयंकर आगि से थको रहै चलि गैल ॥
कीच धूरि जल में परो भाजत रिपु की त्रास ।
ऐसे रिपु की सेन को करै बेगही नास ॥

और, सेन जगावै रात भरि शत्रु बढ़न की त्रास ।
दिन औंघानो सेन को करै तुरतहि नास ॥

वह भूल कर रहा है, उसके सिपाहियों को सारस रात दिन मारैगा ।' ऐसा करने पर चित्रवर्ण के बहुत से सेनापति मारे गए । तब चित्रवर्ण बहुत घबड़ाया और अपने मंत्री से कहने लगा. ' क्या हमने कभी आप का अनादर किया है, आप क्यों चुपचाप बैठे हैं ? कहा भी है ।

मिल्यो राज यह समुझि कै तजै नीति जनि भूप ।
अविनय नासत है श्रियहि ज्यों बूढ़ो बय रूप ॥

विनयी अर्थ, धर्म, जस लहहीं ।
करैं जे पथ्य सुखी नित रहहीं ॥
विद्या अंत लहैं अभ्यासी ।
चतुर लहैं नृपश्रिय सुखरासी ॥

गिद्ध बोला, ' महाराज सुनिये.

मूरखहू नृप सेइ के पंडित च्चातुर धीर ।
लहैं परम श्रिय रूख सम उगे जु जल के तीर ॥

और, जूआ. नारि अहेर अरु भाषन कडुई बात ।
बागदंड ये नृपन के औगुन माने जात ॥

क्योंकि. निरो न साहस सब कुछ करई ।
चाल उपाय सदा नहिं सरई ॥
साहस नीति साथ जहँ अहहीं ।
तहँहिँ सकल श्रिय संपति रहहीं ॥

आपने अपने सिपाहियों का उछाह देखकर मेरे कहने पर ध्यान न दिया उसी बुरी नीति का फल मिल रहा है ।

चूकि चाल दोषी बनैं सदा कुमंत्री लोग ।
सदा अपथ्य किये असैं काको तन नहिं रोग ॥
केहि मद होय न पाय श्रिय केहि मारै नहिं काल ।
को न दुखी परि तियन के मनमोहन के जाल ॥

कृतघनपन नासत उपकारा ।
नीति बिपति, दिनकर अँधियारा ॥
प्रिय संगम चित शोक नसावत ।
नसै शरद ऋतु नभ हिम आवत ॥
श्रिय संपति कैसिहु कहुँ होई ।
नासत है कुनीति नित सोई ॥

तब मैंने भी सोचा कि इनकी आँखों के सामने अँधेरा छाया हुआ है इसी से नीति की बातों को झूठी बकवाद से काट रहे हैं,

शास्त्र सिखाये होत का जाके आप न बूझ ।
दर्पन लैकरि है कहा जाकी आँखि न सूझ ॥

तो मैं भी चुपचाप बैठ रहा ।' राजा हाथ जोड़ कर बोला, 'मैंने बड़ा अपराध किया अब जितने बचे हैं उन्हीं को लेके विन्ध्याचल लौट जाने का उपाय बताइये ।' गिद्ध ने अपने जी में सोचा, ' उपाय तो करना ही चाहिए ।

क्योंकि, बाम्हन अरु महिपाल, गुरू गाय अरु देवता ।
बूढ़ः रोगी बाल इन पर क्रोध न कीजिए ॥

और हँस कर बोला, 'महाराज घबराइये मत । सुनिये,

सन्निपात महँ बैद को, मंत्रिहि बिगरे बात ।
चतुर परखिये, सुचित में सबै चतुर बनि जात ॥

और मूरख छोटेहु काम को करत बेगि घबरात ।
बड़े भारिहू काम में चातुर धीर लखात ॥

तो आप के चरणों के प्रताप से गढ़ी तोड़ जस प्रताप के साथ थोड़ेही दिनों में विन्ध्याचल ले चलूंगा ।' राजा ने कहा 'अब थोड़ी पलटन रह गई है इस से क्या होगा । गिद्ध बोला, 'महाराज' सब कुछ हो जायगा । जो जीतना चाहै वह सब काम चटपट करे । आज चल कर गढ़ घेर लीजिये ।' बगुले दूत ने हिरण्यगर्भ से कहा, । "महाराज, राजा चित्रवर्ण थोड़ी ही पलटन के साथ गिद्ध के कहने से गढ़ घेरने आ रहा है ।" राजहंस बोला, ' क्यों सर्वज्ञ अब क्या करना चाहिये; चकवा बोला, 'महाराज, अपनी पलटन में भले बुरे छाँट लीजिये और सिपाहियों में थोड़ा बहुत धन बाँट दीजिये । कहा है,

कौड़िहु पड़ी अपथ जो जानी।
लेत सहस मोहर सम मानी॥
अवसर पर खोलै निज हाथा।
रहै सो सदा सुखी नरनाथा॥

और, भूखे भाईबन्ध में, तोषन में प्रिय नारि।
रिपु नासन में, यज्ञ में, गाढ़ी विपति विचारि॥
हित संग्रह में, व्याह में, जेहि में ह्वै है नाम।
बहु खरचे नहिं दोष है ऐसे आठहु काम॥

क्योंकि, काज बिगारत मूढ़ नर थोरे खर्च डेराय।
फेकिहै बासन को चतुर चुंगी सन घबराय?

राजा ने कहा, 'ऐसे अवसर पर बहुत धन लुटाने का कौन काम है कहा भी है, धन बचाय दुख हेत धरु'। मंत्री बोला, 'श्री चरणों को दुख कहाँ है।' राजा बोला, 'कहीं भाग न उलटे हों।' मंत्री ने कहा, 'महाराज, बटोरा ही धन नस जाता है। इसी से अब कृपनपना छोड़ अपने वीरों का आदरमान कीजिये.

लरन मरन निश्चय किये, सुखी लहै सनमान।
इक इक को जानै मरम, जीतैं शत्रु प्रमान॥
लरन मरन निश्चय किये, शीलवान रणधीर।
जीति सकै रिपु वाहिनी ऐसे सहसहु वीर॥

क्योंकि, अपनपोस, जो गुन अगुन, भेद गिनै नहिं क्रूर।
गुन न मान, तेहि सन रहै काम परे सब दूर॥

क्योंकि, साँच सूरता दान ये नरपति के गुन तीन।
दोष लगे नरनाह को रहै जो इनसे हीन॥

और मंत्रियों का आदर पहिले होना चाहिये। कहा भी है.

उन्नति में उन्नति गनैं, गनै हानि में हानि।
धन जीवन तेहि सौंपिये ताहि परम हित जानि॥

क्योंकि, जेहि नृप के मंत्री रहैं बालक वञ्चक नारि।
काजसिन्धु डूबै सोई लगे अनीतिबयारि॥

देखिये, हर्ष क्रोध में सम रहै मानै वेद पुरान।
सेवक को भूलै न जो तासु धनद भगवान॥
जियै मरै सो स्वामि सँग हित चाहै सब काल।
ऐसे मंत्रिन को कबहुँ जनि निदरै नरपाल॥

क्योंकि, गिरै काज के सिन्धु में मदबस जब नरपाल।
देहिं सहारा कर पकरि पण्डित जन तेहि काल॥

इतने में मेघवर्ण आकर हाथ जोड़ बोला। "महाराज, बैरी लड़ने को गढ़ के बाहर फाटक पर आ गया है। श्री चरणों की आज्ञा हो, तो मैं भी बाहर निकल कर अपना बल दिखाऊँ। और श्री चरणों से उरिन हो जाऊँ।" चकवा बोला, "जो बाहर निकल कर लड़ना ही था तो गढ़ी क्यों बनवाई गई।

और, नाक रहै जल में विषम, थल में कछु न बसात।
बन के बाहर सिंह हूँ स्यार सरिस बनि जात॥'

कौआ बोला, 'महाराज आप ही चलकर लड़ाई देखिए।
क्योंकि, सेन लड़ावैं शत्रु सन आगे करि निज राय।
स्वामि सौंह निज कूकुर हुँ सिंह सरिस बनिजाय॥'

इसके पीछे सब फाटक पर गए और बड़ी लड़ाई हुई। दूसरे दिन राजा चित्रवर्ण ने गिद्ध से कहा, "अब आपने जो कहा था सो कीजिये।" गिद्ध बोला, सुनिये,

'किलेदार मूरख लती योधा जासु डेरात।
छोट अगुप्त अकालसह सोई दुर्ग टुटि जात॥
वह तो हैं नहीं, सेन बिगारब, घेरिबो, हल्ला पौरुष घोर।
दुर्ग तोरिबे के कहे चारि उपाय कठोर॥

तो अब यत्न करते ही जाते हैं। चित्रवर्ण बोला, "बहुत अच्छा।" दूसरे दिन सूरज निकला तो चारों फाटकों पर लड़ाई होने लगी और गढ़ भीतर घर घर कौओं ने आग लगा दी और हल्ला कर दिया कि 'गढ़ लेलिया, गढ़ लेलिया'। हौरा सुन और आग लगी देख राजहंस के सिपाही घबड़ाकर ताल में कूद पड़े। कहा भी है, मंत्र लेय, विक्रम करै, युद्ध करै, भजि जाय।

अवसर पै सब कुछ करै मन में संक न लाय॥

और राजहंस तो राजसुभाव से भाग न सका उसके साथ सारस सेनापति था उसे चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने घेर लिया। राजा हिरण्यगर्भ बोला "सेनापति सारस, हमें बचा के अब तुम अपने प्रान न दो। हम तो चल नहीं सकते तुम भाग सकते हो जाओ पानी में कूद पड़ो और हमारे लड़के चूड़ामणि को सर्वज्ञ से पूँछकर राजा बनालो। सारस बोला, "महाराज, यह आप क्या कहते हैं। जब तक चाँद सूरज हैं, महाराज की जय रहे। मैं महाराज का किलेदार हूँ, वैरी मेरे हाड़ माँस पर होके किले के भीतर जायगा। और कहा भी है।

गुण ग्राहक औ दानि, छमी स्वामि जग नहिं मिलत।"

राजाबोला, "चतुर भक्त गुणखानि, सेवकहू दुर्लभ अहैं॥"

सारस ने कहा, "महाराज सुनिये,

रन तजि मिटै जु मृत्यु डर तो भागिये जरूर।
मरन अवसि, केहि हेत तो सुजस मिलाइय धूर?
नर जीवन है बायु बस टुटत तरंग समान।
बड़ी पुण्य से मिलत है परहित तजिबो प्रान॥

और मंत्री, राजा, देस, हितु, कोश, सेन, चतुरंग।
दुर्ग, प्रजा, ये, आठ हैं मूलराज के अंग॥

आप स्वामी हैं, आपको सदा बचाना ही चाहिए। क्योंकि

धन संपति पूरिहु प्रजा जियै न नृपति बिहीन।
का करिहै जब आयु ही रही न वैद प्रवीन॥
और, मरे नृपति नित होत है सकल देस कर नास।
उदय होत नृप बढ़त ज्यों जलज दिनेश प्रकास॥

इतने में कुक्कुट ने बढ़कर राजहंस पर पंजा मारा। सारस ने चट आगे बढ़ कर राजा को अपनी ओट में कर लिया। कुक्कुट ने पंजों से बेचारे सारस की देह चिथरा करदी तब सारस ने राजा को पानी में ठेल दिया और कुक्कुट को मारे चोंचों के मार डाला। पीछे बहुत से पंछी सारस पर फट पड़े, और उन्होंने उसे मार डाला। क़िलेदार के मरने पर चित्रवर्ण राजा गढ़ में घुस गया और जो धन मिला सब लूट पाट बहुत से लोगों को क़ैद कर जय जय के धुन में लौट गया।' राजकुमारों ने कहा कि पलटन भर में सारस ही बड़भागी था जिसने अपना जीव देकर अपने स्वामी को बचाया।

क्योंकि, सबै गाय जनमैं जगत बछरा बैल स्वरूप।
लसत कन्ध सो सींग कोउ उपजै साँड अनूप॥

विष्णुशर्मा बोला 'उसने अपनी बीरता से स्वर्ग पाया, अब वह वहाँ अप्सराओं के साथ सुख भोगै।

कहा भी है, स्वामि काज संग्राममहि लरि जो तजत शरीर।
अवसि जात सुरलोक कहँ धन्य भक्त सो बीर॥
करै न कायरपन पुरुष रिपुन बीच परिजाय।
जौ वैरी मारत मरै अमर होत जय पाय॥

तुम लोगों ने लड़ाई सुनी। राजकुमार बोले, 'जी, हाँ।' विष्णुशर्मा बोला और यह भी हो '

गज तुरंग पैदल के साथा।
लरैं कबहुँ जनि जग नरनाथा॥

नीति सुमंत्र फूँक के लागे ।
गिरि खोहन रिपु जाहिं अभागे ॥

इति श्री अवधवासी भूप उपनाम सीताराम कृत नई
राजनीति का तीसरा भाग समाप्त हुआ ।

संधि (मेल मिलाप)

दूसरे दिन राजकुमारों ने कहा, गुरू जी हम ने लड़ाई की कहानी सुनी अब मेल मिलाप बताइये । विष्णुशर्मा बोला सुनिये ।

भयो समर दुइ नृपन महँ बिनसी सेन नथोर ।
कीन्ह गिद्ध चकवा तबहि मेल सन्धि दोउ ओर ॥

राजकुमारों ने कहा, 'कैसे ?' विष्णुशर्मा बोला, तब राजहंस ने कहा, 'हमारे गढ़ में आग किसने लगाई ? यहीं का कोई था या किसी बाहर वाले ने यह काम किया ।" चकवा बोला, 'महाराज आप का बेकारन का मित्र मेघवर्ण नहीं देख पड़ता न उसका कोई संगी साथी है । मैं जानता हूँ यह काम उसी का है । राजा एक छन सोच के बोला, 'हमारा अभाग है कहा भी है, अहै दैव को दोष सब मंत्री को कछु नाहिं ।
बने बनाये काज जब दैवयोग नसि जाहिं ॥

मंत्री बोला, विपति परे निन्दा करैं दैवहि को सब लोग ।
जानत नहिँ सो मूढ़मति निज कर्मन को भोग ॥

और हित चाहत निज मीत को बचन करैं नहिं कान ।
मरै छूटि सो काठ सन कछुआ मूढ़ समान ॥'

राजा बोला 'कैसे ?' मंत्री ने कहा, 'मगध देस में फुल्लोत्पल नाम एक ताल है । उस में संकट विकट नाम दो हंस रहते

थे। उन दोनों का मित्र कम्बुग्रीव नाम एक कछुआ भी था। एक दिन केवटों ने वहाँ आकर कहा 'लाओ आज रात भर यहीं रहें सवेरे उठ मछली कछुए जो कुछ इस में मिलें उन्हें मारें।' कछुए ने सुना तो हंसों से बोला, 'तुम लोगों ने केवटों की बातें सुनी। अब मैं क्या करूँ हंसों। ने कहा देखें तो क्या होता है पीछे उपाय सोच लेंगे। कछुआ बोला, 'न ऐसा कभी न करना हम तो भोगे हुए हैं।

कहा भी है. आगम-सोचै. युक्ति कै करै समय पर जोइ।
दोऊ सुखी. विलसैं सोई कहै जु होइ सो होइ ॥

हंसों ने कहा 'कैसे।' कछुआ बोला, कुछ दिन हुये इसी ताल में तीन मछलियाँ थीं। एक बार ऐसे ही केवटों ने कहा तो आगम-सोची नाम मछली ने कहा. 'हम तो दूसरे ताल में जाते हैं और वह चल खड़ी हुई। दूसरी समय-चतुर नाम मछली बोली, 'कल क्या होगा इसे कौन जान सकता है। जब अवसर होगा तो उपाय कर लेंगे।

कहा है. सोई चतुर जो काज निज बिगरत लेइ सँभारि।
यार छिपायो सौंहही ज्यों बनिये की नारि।

जो-हो-सो-हो- नाम मछली ने 'पूछा कैसे ?' समय-चतुर ने कहा, 'विक्रमपुर में समुद्रदत्त नाम एक बनियाँ रहता था। उसकी स्त्री रत्नप्रभा नाम अपने टहलुए से फँसी थी।

कहा भी है, अप्रिय नहीं कोउ तियन को नहिं पियार जग माहिं।
गाय सरिस बन महँ चरत नित नव ढूँढत जाहिं ॥

एक दिन रत्नप्रभा अपने टहलुए का मुँह चूम रही थी कि उसको समुद्रदत्त ने देख लिया। रत्नप्रभा चट अपने पति के पास दौड़ कर कहने लगी, 'देखिये यह नौकर ऐसा ढीठा

हो गया है कि जो कपूर तुम्हारे लिये आता है उसे खा जाया करता है। आज मैंने इसका मुँह सूँघा।

कहा है, भोजन दूना, चौगुनी बुधि, छगुनी तद्‌बीर।
काम अठगुना होत है तिय सुकुमार सरीर॥

यह सुन टहलुआ बिगड़ कर बोला, 'जिसके घर में ऐसी मेहरिया हो वहाँ टहलुआ कैसे टिक सकता है,' और उठ कर चला। तब तो साह जी उसे समझा बुझा कर लौटा लाये। इसी से मैंने कहा 'सोइ चतुर इत्यादि।' जो-हो-सो-हो बोली,

'होनहार बदलै नहीं होनी होय सो होइ।
चिन्ता विषमारक सुरस यह न पियो क्यों, लोइ॥

सवेरे जब ताल में जाल डाला गया तो समय-चतुर मरी सी बन गयी। जब जाल से निकाली गयी तो कूद कर गहिरे पानी में चली गयी। जो-हो-सो-हो को केवटों ने पकड़ कर मारडाला। इसी से मैं ने कहा 'आगम-सोचे इत्यादि। तो अब मुझे दूसरे ताल में पहुँचाने का उपाय करो'। हंसों ने कहा, भाई तुम्हारे लिये तो कुशल तभी होगी जब तुम दूसरे ताल में पहुँच जाओगे। थल पर चलना तो बड़ा कठिन है। कछुवे ने कहा, तो ऐसा उपाय करो जिस में हम तुम्हारे साथ उड़ते हुये चलें' हंसों ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है'। कछुआ बोला, 'एक लकड़ी तुम दोनों अपनी चोंचों से पकड़े रहो मैं मुँह से दबा लूँगा। तुम्हारे पंखों के बल से मैं भी सुख से चला जाऊँगा॥ हंसों ने कहा, 'हो तो सकता है, पर

जो उपाय सोचै चतुर हानिहु सोचत जाय।
बगुले के बच्चे लिये, लखु नेउर सब खाय॥

कछुआ बोला, 'कैसे'। हंसों ने कहा, 'उत्तर में गृध्रकूट नाम एक पहाड़ है। वहीं नर्मदा के किनारे बरगद के पेड़ पर बगुले रहते थे। उसी पेड़ के नीचे बिल में साँप रहता था। वह बगुलों के बच्चे खा जाया करता था। एक दिन सब बगुले इसी दुख से रोरहे थे कि एक बूढ़ा बगुला बोला, 'अजी तुम सब यह करो। मछलियाँ लाओ और नेवले की बिल से साँप की बिल तक तार लगा कर रख दो। नेवला बाहर निकलेगा तो मछलियों को खाता हुआ साँप की बिल तक चला जायगा और साँप तो उसका जनम का बैरी होता ही है उसे भी मार डालेगा। और यही हुआ। पीछे नेवले को देख बच्चे चिल्लाने लगे तो नेवला पेड़ पर चढ़ बच्चों को भी खा गया। इसी से हम लोगों ने कहा जो उपाय इत्यादि। हम लोग तुम्हें आकास में उड़ा ले जायँगे तो लोग कुछ कहैंहीगे। तुम जो उन की बात सुनकर कुछ बोले तो तुम्हारी मौत आजायगी।' कछुआ बोला क्या हम अज्ञान हैं। हम कुछ न बोलेंगे। इस पर कछुए को लेकर हंस चले। राह में अहीर पीछे दौड़े और कहने लगे, 'देखो बड़ा अचरज है पखेरू कछुआ उड़ाये लिए जाते हैं।' एक बोला, 'जो कहीं गिरे तो यहीं भून के खाओ' दूसरे ने कहा, घर ले चलेंगे।' एक ने कहा, 'ताल पर ले जा के भूनेंगे।' उन सब की बातें सुन कछुआ हंसों की बात तो भूल गया और बोला, 'तुम सब अंगार खाना' और नीचे गिर पड़ा। अहीरों ने भी उसे मार डाला। इसी से मैंने कहा, 'जो उपाय इत्यादि'। इतने में बगुला दूत आया और हाथ जोड़ बोला, 'मैंने पहिले ही कहा था कि गढ़ की जाँच कर ली जाय। सो न किया गया उसी चूक का यह फल है। गिद्धही

के कहने से मेघवर्ण कौए ने गढ़ में आग लगा दी थी। 'राजा साँस लेकर बोला,

'करै शत्रु विश्वास जो निरखि प्रीति उपकार।
गिरि के जागै मूढ़ सो सोइ पेड़ की डार॥'

दूत बोला, 'महाराज, वहाँ आग लगा कर कौआ जो वहाँ पहुँचा तो चित्रवर्ण ने उस की बड़ी आवभगत की और बोला, 'मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राज दे दो।'।

कहा है, कीन्ह जु चाकर काज कछु ताहि न करै निरास।
फल से, वच से, डीठि से करै प्रसाद प्रकास॥

चकवा बोला, 'महाराज आपने सुना दूत क्या कहता है' राजा ने कहा, 'तब'। दूत बोला, 'तब गिद्ध मंत्री बोला, महाराज, यह बात ठीक नहीं और कुछ बकसीस दीजिए।

क्योंकि, कैसे ताहि हटाइए जिन पायो अधिकार।
बालू पर के चिन्ह सम नीच साथ उपकार॥

और बड़े की जगह नीच को कभी करना न चाहिए।

कहा है, नीच ऊँच पद पाय, स्वामिहि नासन चहत नित।
बधन चल्यो मुनिराय, बाघ होय इक मूस ज्यों॥

चित्रवर्ण बोला, 'कैसे'? गिद्ध ने कहा, 'गौतम वन में महातप नाम मुनि रहते थे। एक दिन उनकी कुटी के पास एक मूस का बच्चा कौए के मुँह से छूट पड़ा। मुनि ने दया कर के उसे तीनी के चावल खिला कर पाला। एक दिन मुनि ने देखा कि उसे खाने को एक बिलार झपटा। मुनि ने अपनी तपस्या के बल से उसे बड़ा बली बिलार कर दिया। बिलार कुत्ते से डरा करता था। इस पर मुनि ने उसे कुत्ता

बना दिया। कुत्ता बाघ से डरा करता था। तब मुनि के कहने से वह बाघ हो गया। पर मुनि उसे मूसही ऐसा जानते थे और सब लोग उसे देख कर कहा करते थे कि मुनि ने इसे मूस से बाघ बनाया है। उनकी बात सुन बाघ बहुत घबड़ाता था और सोचता था, 'जब तक मुनि जियेंगे मेरा अजस न जायगा.' ऐसा सोच उस ने मुनि के मारने का विचार किया। मुनि ने उसके पेट की बात जानली और कहा, तू फिर मूस होजा' और वह फिर मूस होगया। इसी से मैं ने कहा 'नीच ऊँच इत्यादि' और महाराज, इसे आप सहज भी न समझियेगा। सुनिए. इक बगुला मछरी भखो भली बुरी सब खानि।

नस्यो केकड़ाहाथ सों ताहि माछ सम जानि॥

चित्रवर्ण बोला 'कैसे.' मंत्री बोला, 'मालवदेस में पद्यगर्भ नाम एक ताल है। वहाँ एक बूढ़ा बगुला जब थक गया तो एक दिन घबराया हुआ सा मुँह बना कर बैठा था। उसे देख दूर ही से एक केकड़े ने पूछा, 'क्यों भाई तुम क्यों अहार छोड़े बैठे हो। बगुला बोला हम मछली ही खा कर जीते हैं। सो आज हमने नगर के पास केवटों को बात करते सुना है। कि इस ताल की सब मछली मार डाली जायँगी। हमने समझा कि अब क्या खा के जियेंगे इसी से अभी से अहार छोड़ दिया।' उसकी बात सुन मछलियों ने सोचा 'यह तो आज हम लोगों का बड़ा हितू जान पड़ता है। अब इसी से पूछें क्या करना चाहिए। कहा भी है. उपकारी रिपु सन मिलिय तजिय मित्र अपकारि।

करन अहित हित दुहुन को लखन मन निरधारि॥

मछलियों ने कहा, 'कहो जी बगुले, हम लोगों के बचने का कोई उपाय है! बगुला बोला, 'हाँ दूसरे ताल में चलो। हम तुम को एक एक कर के पहुँचा देंगे'॥

मछलियों ने डर के मारे कहा, 'बहुत अच्छा। पर वह पापी बगुला एक एक मछली ले जाता और एक जगह पर उन्हें खा कर लौट के आकर कहता, 'हमने उसे दूसरे ताल में पहुँचा दिया।' एक दिन केकड़े ने कहा, 'भाई बगुले हमें भी वहीं पहुँचा दो।' बगुले ने कभी केकड़े का माँस खाया तो था ही नहीं, उसे उठाकर एक चट्टान पर रक्खा। केकड़े ने मछली के काँटे इधर उधर पड़े देखे तो सोचा, 'हाथ में भी मरा। अच्छा अब ऐसे अवसर पर जो ठीक हो वही करना चाहिए,

क्योंकि, डरसों तबही लों डरिय जब लगि सौंह न सोय।
सौंहें डरकारन निरखि भिरिय जो होय सो होय॥

और, शत्रु चढ़े जो नहिं लखै निज हित कछुक सुजान।
लरि रिपुसन निज शक्ति भरि तजै समर महँ प्रान॥

ऐसा सोच केकड़ा बगुले के गले में चिमट गया और बगुला मर गया। इसी से मैंने कहा 'इक बगुला इत्यादि।' राजा चित्रवर्ण ने फिर कहा, 'मंत्री जो हमने यह विचारा है कि यहाँ मेघवर्ण जो राजा रहेगा तो कपूरद्वीप की जितनी अच्छी अच्छी वस्तु हैं सब हमें भेंट भेजा करैगा। और हम लोग विन्ध्याचल में चैन करेंगे'। गिद्ध हँस कर बोला, 'महाराज,

चेति चेति जो होन की बातैं लहै अनन्द।
सो पाछे पछितात है ज्यों बाम्हन मतिमन्द॥

राजा बोला, 'कैसे'? मंत्री ने कहा, 'देवकोट नगर में देवशर्म्मा नाम एक बाम्हन रहता था। उसे सतुआसंक्रान्ति के दिन एक कुल्हड़ भर सत्तू मिला। सत्तू ले धूप के मारे व्याकुल हो एक कुम्हार के घर चला गया और सत्तू को मूस से बचाने को हाथ में डंडा लिए लेट रहा। लेटे लेटे उसने सोचा कि सत्तू का कुल्हड़ बेचूँ तो दस कौड़ियाँ मिलेंगी उनकू ऐसे अवसर पर

कुल्हड़ मोल लेकर बेचूँ, फिर घड़े बेचूँ, फिर जब और धन बढ़े तो सुपारी कपड़े का व्योपार करूँ तो लखपती हो जाऊँगा। और तब चार व्याह करूँगा। उन चारों में जो सब से सुन्दर और छोटी होगी उसी को चाहूँगा। और सबको बुरा लगैगा और लड़ा करेंगी तो मैं रिस कर के इसी डंडे से सबको मारूँगा। इतना कह कर उसने जो डंडा चलाया तो उसका कुल्हड़ चूर चूर हो गया और कुम्हार की हाँड़ियाँ भी फूट गईं। कुम्हार हाँड़ियों का फूटना सुन कर दौड़ा और बाम्हन को गला पकड़ बाहर निकाल दिया। इसी से मैंने कहा 'चेति इत्यादि'। इस पर राजा ने एकान्त में मंत्री से पूँछा, कि, 'अच्छा बताइए क्या करना चाहिए। गिद्ध बोला,

'मदमाता गज होय जब, मदबस फूलै राय।
रखवारे औ मंत्रि को सदा दोष लगि जाय॥

इतना तो सुनिए कि यह जो जीति हुई है और गढ़ी टूटी है सो हम लोगों के बल के घमंड से या आप के चरणों के प्रताप के उपाय से।' राजा ने कहा, 'आप के उपाय से। गिद्ध बोला, 'अब हमारा कहना मानिए तो देस लौट चलिए। नहीं तो बरसात आया चाहती है और उधरवालों का बल बराबर ही है। पराये देस में लड़ाई होने पर फिर घर लौटना भी कठिन हो जायगा। अब सोभा इसी में है कि सन्धि कर लें और चले जाँय गढ़ी टूटी जस मिला।

क्योंकि, आगे करि निज धर्म को ठकुरसुहाती त्यागि।
हित की कड़ई जो कहै तासु स्वामि बड़भागि॥

और, राज मित्र जस सेन कै अपनी जीवन प्रान।
युध करिकै सन्देह में को डारै मतिमान?

और, रन में जय को ठीक नहिं, तजिय समहु सँग रारि।
नसे सुन्द उपसुन्द लरि, रहे तुल्य बलधारि॥

राजा बोला, 'कैसे' मंत्री ने कहा अगले दिनों में सुन्द उपसुन्द नाम दो दैत्य बड़े बली थे। उन दोनों ने तीनों लोक का राज पाने के लिये महादेव जी की कड़ी तपस्या की। महादेव जी प्रसन्न होकर बोले 'वर माँग'। उस घड़ी उन दोनों की जीभ पर सरस्वती आगई और जो माँगना चाहते थे उसे तो भूल गए और बोले, 'जो भगवान हम पर प्रसन्न हो तो हमें अपनी पार्वती दे दो।' भोलानाथ जी वर तो देही चुके थे पार्वती सौंप दी। उन्हें देख उनके रूप पर मोहित हो दोनों पापी दैत्य झगड़ने लगे और कहने लगे यह मेरी है यह मेरी है और चलो किसी बड़े बूढ़े से पूछ लें।

इतने में महादेव जी बूढ़े बाम्हन के रूप में सामने आगए। उससे दोनों ने पूछा, 'देवता जी, यह स्त्री हमने अपने बल से पाई है। बताइए इसे कौन ले।' बाम्हन बोला।

'बाम्हन में लखु ज्ञान, क्षत्रिय में लखु बाहु बल।
वैश्यन में धन धान, द्विज की सेवा शूद्र में॥

तुम दोनों छत्री हो। लड़ना ही तुम्हारी रीति है।' इतना सुनते ही दोनों ने कहा, 'आपने ठीक कहा' और दोनों का बल बराबर तो था ही, दोनों लड़ कर मर गए। इसी से मैं ने कहा "रन में इत्यादि"। राजा बोला तो आपने पहिले ही क्यों नहीं कहा था।" मंत्री ने कहा, 'आपने मेरी बात पूरी पूरी कब सुनी थी। मेरे कहने से यह लड़ाई हुई थी?। हिरण्यगर्भ तो मेल रखने के जोग है उससे लड़ना ठीक नहीं। कहा है,

संधि करै बिगरै नहीं साँचा पालै साँच।
आरज करै न नीचपन आयहु जिय पै आँच॥

धार्मिक जन से युध किये सब लरिहैं तेहि साथ।
धर्म, प्रजा अनुराग बस सो दुर्जय नरनाथ॥
संधि नीच सँग कीजिये जब लखि परै विनास।
तासों आश्रय बिन नहीं समय बितन की आस॥
रहैं बाँस जोलों सटै करैं दुःख सन सोइ।
भाई बन्धुन सों मिलो त्यों दुर्जय नृप होइ॥
बली संग नाहीं उचित कबहुँक जग महँ रारि।
डोलत मेघ वही दिसा जेहि दिसि बहै बयारि॥
निज भुज बल जिन समर महँ लये जीति बहु राज।
परशुराम सम सिध करै तासु तेज सब काज॥
जीते युद्ध अनेक जो तेहि सँग करि सँधान।
जीते तासु प्रताप सन निज रिपु भूप सुजान॥

राजहंस में कई गुन हैं। उससे मेल रखना ही चाहिये।' चकवा बोला, 'दूत, हमने सब समझ लिया, तुम जाओ फिर आना'। हिरण्यगर्भ ने चकवे से पूछा, 'मंत्री कैसों से मेल न करना चाहिए, बताओ तो।' मंत्री बोला, सुनिये,

बूढ़ा, रोगी, बाल, जातिनिसारो जो रहै।
विषयलीन सब काल, निन्दै बाम्हन देव जो॥
नेकहु बात डेराय, जाके जन डरपोक हैं।
लोभी जो नरराय, कै जाकी लोभी प्रजा॥
मंत्री जासु विरक्त, सावधान चित जो नहीं।
जाकी प्रजा न भक्त, इन सँग संधि न कीजिये॥
दैव दैव नित जो रटै, करै दैव अपमान।
जासु देस महँगी परी कै बल जासु खुटान॥
झूठा, जाके शत्रु बहु, रहै न जो निज देस।
समै लखै नहिं, तासु सँगसंधि न करै नरेस॥

इन सँग संधि न कीजिये, युद्ध लीजिये ठान ।
युद्ध ठनत ही शत्रु के ये वस होत प्रमान ॥
शक्ति और उत्साह से बूढ़ा रोगी हीन ।
अपने ही सेवकन से बना रहै सो दीन ॥
बालक सँग लरिबो उचित ताको ननुक प्रभाव ।
सो नहिं समुझै युद्धफल लगै तहाँ रिपुदाव ॥
जातिनिसारे शत्रु को सहजहि सकिय नसाय ।
तेहि हनि हैं निज जन तिनहिं जो लीजै अपनाय ॥
विषयी नृप को सहज ही ताके रिपु हनि लेत ।
देव विप्र निन्दक नृपहिं धर्मशक्ति तजि देत ॥
होइ धर्म की शक्ति बिन सो आपहि नसि जात ।
धर्म बली है जगत में सो नहिं धर्म डेरात ॥
भागि जात डरपोंक नर समर छाँड़ि डर मानि ।
जन डरपोंक तजैं प्रभुहि चढ़त बली नृप जानि ॥
लोभी धन बाँटै नहीं लड़ै न तेहि संग कोइ ।
लोभी जनवारो नसै उनहीं के बस होइ ॥
मंत्री जासु विरक्त हिं देत समर महँ त्यागि ।
प्रजा भक्ति बिन काम पै क्यों लरि हैं तेहि लागि ॥
सुनै अनेकन मंत्र जो थिर चित रहै न राय ।
तेहि सन मन मंत्रीन को काल देखि हटि जाय ॥
दैव करै सो होइ है दैवहि सब को मूल ।
ऐसे सोचनहार के दैव सदा प्रतिकूल ॥
जासु प्रजा भूखी रहै सो आपहि दुख माहिं ।
जाकी सेना अबल तेहि शक्ति लड़न की नाहिं ॥
संधि तोरि फुटि जात जो सत्यधर्म से हीन ।
ऐसे सँग कबहुँक करै संधि न भूप प्रवीन ॥

बाजन बीच कपोत है जाके शत्रु न थोर।
परि है विपति गँभीर में सो झुकि है जेहि ओर॥
छोटहु रिपु तेहि हनत जो देस तजे नरनाह।
जल में ज्यों गजराज को पकरै छोटहु ग्राह॥
अवसरज्ञानी मारि है ताहि करै जो चूक।
राति समय ज्यों काग को वेगहि हनै उलूक॥

और सुनिये मेल लड़ाई चढ़ाई, घेरा, संश्रय, दुविधा ये युद्ध की छः रीतियाँ हैं। काम में हाथ डालना, पुरुष और धन इकट्ठा करना, देस काल का विभाग, हानि का प्रतीकार और कार्यसिद्धि ये मंत्र के पाँच अंग हैं। साम, दान, दंड, भेद चार उपाय हैं। उत्साहशक्ति, मंत्रशक्ति और प्रभुशक्ति तीन शक्तियाँ हैं। इन सब का विचार करने से बड़ों की सदा जीत रहती है।

कोटि जतन कीन्हें न जो मिलै न दीन्हे दान।
मिलै धाय सो श्रिय तिनहिं जिनहिं नीति को ज्ञान॥

कहा भी है, दीन्ह बाँटि जिन धनहिं बराबर।
छिपो मंत्र है, रहत गूढ़ चर॥
काहुहि जो न बचन कटु भाषत।
सो सारा जग निज बस राखत॥

पर महाराज, मंत्री गिद्ध ने मेल करने को कहा तो है पर राजा को जय का घमंड है वह मानैगा नहीं। तो अब यह कीजिये कि हमारा मित्र सिंहलद्वीप का महाबली राजा सारस जम्बुद्वीप में गड़बड़ मचावै,

बल एकत्र करि भेद छिपाई।
जो निज रिपु पर करत चढ़ाई॥

अरि तापैं मिलि है तजि द्रोहा।
ज्यों तपि जुरै लोह सन लोहा॥

राजा ने कहा, 'बहुत अच्छा'। ऐसा कहके विचित्र नाम बगुले को गुप्त चिट्ठी देकर सिंहल द्वीप भेज दिया। दूसरे दिन दूत ने फिर आकर कहा, "महाराज, सुनिये वहाँ की बात यह है। गिद्ध बोला 'मेघवर्ण वहाँ बहुत दिन तक रहा है। वही कह सकता है कि हिरण्यगर्भ राजा मेल करने के जोग है, कि नहीं। इस पर राजा ने मेघवर्ण को बुलाकर पूछा, 'क्यों मेघवर्ण हिरण्यगर्भ राजा कैसे हैं? और उनका मंत्री कैसा है। कौआ बोला, 'महाराज, राजा हिरण्यगर्भ युधिष्ठिर ऐसे उदार और सत्यवादी हैं चकवा ऐसा मंत्री भी दूसरा न होगा। राजा ने कहा, 'जो ऐसी बात है तो तुमने उन दोनों को कैसे धोखा दिया। कौआ हँस कर बोला, 'महाराज

का चतुराई तेहि ठगे करै जु निज विश्वास।
कौन वीरता तेहि हने जो सोये निज पास॥

महाराज, मंत्री ने मुझे देखते ही जान लिया पर राजा बड़ा भला मानस है: इसीसे धोखा खा गया।

दुर्जन को अपने सरिस साँचा मानैं जोइ।
बकरावाले विप्र सम ताकी गति नित होइ॥

राजा ने कहा, 'कैसे'। मेघवर्ण बोला, 'गौतम बन में एक बाम्हन ने यज्ञ ठाना। उसके लिये पास के गाँव में एक जाकर बकरा मोल लिया और कंधे पर रख कर लाता था कि उसे तीन धूर्तों ने तका। धूर्तों ने कहा 'इस बकरे को किसी उपाय से लेना चाहिये, और उस बाम्हन की बाट में सड़क के किनारे पेड़ के तले दूर दूर खड़े हो गये। एक ने कहा, 'बाम्हन देवता तुम

कुत्ते को कंधे पर क्यों लिये जाते हो'। वाम्हन बोला, 'नहीं तो, बकरा तो है।' दूसरा कोस भर आगे खड़ा था उसने भी वही कहा। उसकी बात सुन वाम्हन ने बकरे को रख दिया और बार बार फिर कन्धे पर उठाकर घबराता हुआ चला।

कहा है, सज्जन हू को मन डिगै सुनत खलन की बात।
करि इनकर विश्वास नर ऊँट सरिस नसि जात॥

राजा ने कहा, कैसे? कौआ बोला, 'किसी बन में मदोत्कट नाम सिंह रहता था उसके तीन टहलुए थे एक कौआ दूसरा बाघ तीसरा स्यार। वह तीनों एक दिन इधर उधर फिरते थे कि एक ऊँट मिला। ऊँट से एक ने पूछा तुम कहाँ से आते हो। इस पर ऊँट,ने अपना व्यौरा कह सुनाया। तब तीनों ने ऊँट को साथ लिया और सिंह के पास लाके सौंपदिया। सिंह ने उसे अभय किया और उसका नाम चित्रकर्ण धर अपने साथ रक्खा। कुछ दिन बीते एक दिन सिंह का जी अच्छा न था और पानी भी बहुत बरसा था इस से कुछ अहार न मिल सका, और चारों बहुत घबड़ाए। तब कौआ बाघ और स्यार ने विचारा कि ऐसा उपाय करना चाहिए जिस में सिंह ऊँट को मारखाय। इस लमटँगे कटीलाखाने वाले का कौन काम है। बाघ बोला, 'स्वामी ने उसे अभय करके रक्खा है। तो यह कैसे होगा। कौआ बोला,

तजै पुत्र कहँ भूखी माय।
भूखी नागिन अंडहि खाय॥
करुना दया भूख सब हरै।
कौन पाप भूखा नहिं करै?

पागल मदमाता थका क्रोधी औ अखुलान।
भूखे लोभी कामिजन धर्म न करैं प्रमान॥

ऐसा सोच विचार सब सिंह के पास गये। सिंह बोला, 'कुछ खाने को मिला' कौए ने कहा, 'महाराज बहुत दौड़ धूपे कुछ न पाया। सिंह बोला, 'फिर जीने का कौन उपाय है। कौआ बोला, 'खाने को रक्खा है पर उसे छोड़ हम सब जी देना चाहते हैं।' सिंह ने कहा, 'कहाँ क्या रक्खा है' कौए ने कान में कहा, 'चित्रकर्ण ही तो।' सिंह ने अपने कान पकड़े और बोला, 'राम, राम, हमने उसे अभयदान दिया है। यह कैसे हो सकता है।

भूमिदान कै सुबरनदाना।
अन्नदान गोदान बखाना॥
औरहु महादान जग जोई।
अभयदान के सम नहिं कोई॥
सकल काम पूरन भये अश्वमेध फल जान।
शरणागत रक्षा किये मिले पुण्य फल तान॥

कौआ बोला, 'महाराज, आप उसे न मारिए। हम लोग ऐसा उपाय करेंगे कि वह आप ही कहैगा कि मुझे मारिए।' उसकी बात सुन सिंह चुप हो रहा। कौआ औसर पाके सब के साथ सिंह के पास फिर गया। वहाँ कौआ बोला, 'महाराज कुछ नहीं मिलता। आप कई दिन के उपासे हैं सो आप मुझे खाइए। क्योंकि,

स्वामिहि सब को मूल जिते अंग हैं राज कै।
लहै सदा फल फूल मूल सहित तरु सेइ कै॥

सिंह ने कहा, 'भैया मरजाना अच्छा, ऐसा हम से न हो सकैगा।' स्यार ने भी वैसा ही कहा। सिंह बोला, 'नहीं कभी नहीं' बाघ ने कहा, 'महाराज मेरी माँस खाइए।' सिंह ने कहा

'यह ठीक नहीं । चित्रकर्ण को इन की बात सुन कर विश्वास जो हुआ तो उसने कहा, 'मुझे खाइए ।' उसके मुँह से ज्यों ही यह बात निकली त्यों भेड़िए ने उसका पेट फाड़ डाला और सब ने मिलकर उसे मार खाया । इसी से मैं ने कहा 'सज्जन हू को मन इत्यादि ।' इस पर तीसरे धूर्त की बात सुन बाम्हन को निश्चय हो गया कि यह कुत्ता है और उसको उतार पोखरे में नहाके अपने घर गया । बकरे को धूर्त्तों ने भून खाया । इसी से मैं ने कहा, 'दुर्जन को अपने सरिस इत्यादि' राजा ने कहा 'मेघवर्ण तुम वैरियों के बीच में कैसे रहे और उनको तुम ने कैसे मिला रक्खा । मेघवर्ण बोला, 'महाराज अपने मतलब से और स्वामी का काम करने के लिये लोग क्या क्या नहीं करते ।

देखिए. बारन के हित काठ को लावैं निज सिर धारि ।
पद धोवत काटत चलैं रूखमूल सरिवारि ॥

कहा भी है, राखैं काँधे पै रिपुहिं काम परे मतिमान ।
लहि अवसर पुनि तेहि हनैं बूढ़े साँप समान ॥

राजा ने कहा "कैसे ?" मेघवर्ण बोला उजड़े वन में मन्द विसर्प नाम साँप रहता था । बुढ़ापे के मारे वह साँप अहार न पाता था । और ताल के किनारे पड़ा था उससे एक मेंढक ने पूँछा, 'क्यों जी तुम अपना अहार क्यों नहीं ढूढ़ते ।' साँप बोला 'भाई क्यों पूछते हो मुझ से ? अभागो का हाल पूछ के क्या. करोगे ।' मेंढक को उसकी बात सुन के और भी चाह बढ़ी और कहने लगा, 'नहीं. कहो कहो ।' साँप बोला, 'भाई ब्रह्मपुर में कौंडिन्य नाम बाम्हन का एक लड़का बड़ा होनहार पढ़ा लिखा बीस बरस का था । उसे मैं ने काट खाया । लड़के के मरने के दुख से कौंडिन्य बेसुध होकर गिर पड़ा और इधर उधर लोटने

लगा। उसका दुख देख ब्रह्मपुर के रहने वाले उसके सब भाई बन्धु इकट्ठा होकर उसे समझाने लगे।

कहा भी है, दुख सुख में महँगी परे शत्रु चढ़े जब कोइ।
राजद्वार मसान में साथ देइहित सोइ॥

कपिल नाम ब्राह्मन बोला. कौडिन्य तुम बड़े बेसमझ हो जो इतना सोचकरते हो। सुनो.

जन्मत पुत्र अनित्यता बैठावत निज अंक।
पाछे अब सोइ प्रान हित को सोचै मतिरंक॥

और. कहाँ गये बलसेनयुत महा बली नरराय।
साखी जासु वियोग की धरती अजहुँ लखाय॥

और. संपति सँग आपति लगी नास तेह के संग।
संगम सँग वियोग है उपजन के सँग भंग॥
जानि परै नहिं होतहू छिन छिन छीन सरीर।
काँचे घट को फाटिबो लखिय परै जब नीर॥ क्योंकि,

मृत्यु जन्तु की जगत में छिन प्रति दिन नियराति।
मारन हित लै जात तेहि बध्यभूमि की भाँति॥
बहत बहत दुइ काठ ज्यों सरि में मिलि बिलगायँ।
प्राणिन केर संयोग त्यों यहि जग माँहिं लखायँ॥
चलत बटोही थकि रुकत ज्यों इक तरु की छाँह।
प्रानिन के संयोग त्यों गनिये यहि जग माँह॥

और, मिलै जु पाँचहु तत्व में तत्वन बन्यो सरीर।
गये सो निज निज ठाँव तेहि क्यों सोचे मति धीर॥
जेते जेते करत हैं नर निज मन के नात।
तिती शोक की कील जनु हिय में गाड़त जात॥
नहिं निश्चय कछु दिवस लौं हित बन्धुन को संग।

अपने ही तन प्रान को संभव पल पल भङ्ग ॥

और. जीवन ही से मरन ज्यों जानि लेत सब कोइ ।
त्यों वियोग सँयोग से सूचित सब कहँ होइ ॥
प्यारन संग सँयोग नित पहिले मन हरि लेत ।
पीछे अन्न अपथ्य सम दारुन ही दुख देत ॥

और, बहो जात लौटत न फिरि धारनीर की भाँति ।
हरत प्रानि की आयु को बीतत हैं दिन राति ॥
सज्जन संग हैं जगत में सुख की अवधि प्रमान ।
सज्जन बिछुड़न दुःख की अवधि गनैं मतिमान ॥
यहि कारण जन नहिं चहैं भलन संग जग माहिं ।
इनके बिछुड़न सन फटे हिय की औषधि नाहिं ॥
कैसे कैसे काम किय सगर आदि महिपाल ।
तिनके कामहुँ को तिनहुँ हन्यो भयंकर काल ॥

जे चेतत नित मृत्यु कठोरा ।
तासु प्रहार गनैं अति घोरा ॥
पानी परत चाम बंधन सम ।
रहैं सिथिल तिनके सब उद्यम ॥

जाके आवन गर्भ में बीतै पहिली राति ।
दिन दिन जानो मृत्यु सो प्राणी की नियराति ॥

संसार को देखो सोच करना बेसमझ का काम है । देखो.

शोकहेत अज्ञान है जो पै होत वियोग ।
कछु दिन बीते शोक को भूलि जात क्यों लोग ॥

और अपने को सँभालो । सोच करना छोड़ दो । क्योंकि,

हिय बेधैं नहिं लखि परैं गाढ़ शोक के तीर ।
इनकी एकहि औषधी. धरिय मित्र मन धीर ॥

उसकी बात सुन कौडिन्य उठ बैठा और बोला, 'अब मेरे लिये घर नरक बराबर है, अब मैं वन चला जाऊँगा। कपिल ने कहा,

रागिन के बनहूँ रहे होत दोषसमुदाय।
इन्द्रिय जीते घरहु में तप नहिं कठिन लखाय॥
बुरे काम तजि धर्म में जिन निज मन दृढ़ कीन्ह।
घरही को तपभूमि की तिन पदवी नित दीन्ह॥

क्योंकि, कोऊ आश्रम में रहै धर्म सकै करि पानि।
करत धर्म नर नारि में भेद गनैं नहिं ज्ञानि॥

कहा है, जीवन हेत अहार औ संतति के हित काम।
बोल सत्य हित जासु, ते तरिहैं दुर्गम ठाम॥

और, रोग दोष जीवन मरन लगे जगत के फंद।
यहि असार संसार में छाड़ेहि मिलै अनंद॥
दुख ही दुख संसार में देखि परै सब ठाम।
घटै जु दुःख उपाय से कहैं तासु सुख नाम॥

और, संग सदा छाँड़े कुसल जो छुटि सकै न सोइ।
संतसंग तो कीजिये यही सुऔषधि होइ॥
काम सदा छाँड़े कुसल जो छुटि सकै न सोइ।
करिये सो निज नारि सन यही सुऔषधि होइ॥

कौडिन्य ने कहा, 'ठीक है।' इस पर उस बाम्हन ने सोच के मारे मुझे सराप दिया कि जा तू आज से मेढकों की सवारी में रह। इसी से मैं बाम्हन की सराप भोगने को मेढकों को लादने के लिये यहाँ पड़ा हूँ।' यह बात उस मेढक ने अपने राजा से जाकर कही। मेढकों का राजा आया और साँप पर चढ़ा। साँप भी उसे लेकर फिरा करता था। दूसरे दिन साँप न चल सका तो मेढकों के राजा ने कहा 'आज तुम क्यों

नहीं चल सकते। साँप बोला, 'महाराज, अहार नहीं मिला।' राजा ने कहा, 'हम तुम्हें आज्ञा देते हैं तुम मेढक खाओ।' उसने हाथ जोड़के कहा, 'महाराज की बड़ी दया हुई।' और धीरे धीरे मेढकों को खाने लगा। जब ताल में और कोई मेढक न रहा तो राजा को भी खागया। इसी से मैंने कहा 'राखै काँधे इत्यादि'। महाराज, अब गई बात को क्या कहें जो हुआ सो हुआ मेरी समझ में यही आता है कि राजा हिरण्यगर्भ के साथ मेल करना चाहिये'। राजा ने कहा, 'तुम ऐसा क्यों समझते हो, हम ने उसे जीत लिया है। जो वह हमारी आज्ञा पालै, और हमारी सेवकाई करै तो रहे नहीं तो उस का राज लेलो। इतने में जम्बुद्वीप से एक सुग्गे ने आकर कहा, 'महाराज सिंहलद्वीप के सारस राजाने जम्बुद्वीप पर चढ़ाई की है'। राजा ने घबड़ा के कहा, 'क्या! क्या!'। सुग्गे ने फिर वही कहा। गिद्ध ने अपने मन में कहा, 'वाह चकवा मन्त्री वाह'। राजा रिसकर बोला, "अच्छा इसे रहने दो उसे चलकर पहिले जड़से उखाड़दो।" गिद्ध हँस के बोला,

> व्यर्थ कबहुँ गरजिय नहीं सरदपयोद समान।
> लाभ हानि पर की करै नहीं प्रकास सुजान॥
> रारि करै राजा नहीं बहुतन सन एक संग।
> कीटहु घेरि अनेक नित नासैं प्रबल भुजंग॥

महाराज, तो क्या इहाँ से बिना मेल किए जाना होगा। हमारे पीछे से चढ़ाई होगी, और,

> मर्म बात जाने बिना परै क्रोध बस जोइ।
> मारि नेवले को दुखी सो बाम्हन सम होइ॥

राजा ने पूछा, 'कैसे ?' दूरदर्शी बोला, 'उज्जयिनी में माधव नाम बाम्हन रहता था। उसको बाम्हनी के लड़का हुआ। एक दिन वह लड़के की रखवारी को बाम्हन को बैठाकर नहाने चली गई। उसी छन बाम्हन को राजा के घर से नेवता आया। उसे देख दरिद्री लालची बाम्हन ने सोचा "जो मैं अभी न गया तो कोई और पहुँचेगा।

कहा है, लेन देन को बात में काज करन के हेत।
ढील करै तो काल सब तेहि कर रस हरि लेत ॥

लड़के की रखवाली को कोई नहीं है। क्या करूँ अच्छा। मैंने बहुत दिनों से एक नेवला पाला है उसे मैं लड़का ही समझता रहा हूँ। उसी को बैठाकर चला जाऊँ। बाम्हन तो चला गया और लड़के के पास एक साँप आया सो नेवले ने धीरे से उसे मार कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। जब बाम्हन आया तो नेवला मुँह हाथ में लोहू लगाए हुए झपट के बाम्हन के पाँव पर लोटने लगा। बाम्हन ने उसे देख यह विचारा कि इस ने मेरे लड़के को मार खाया और नेवले को मार डाला। आगे बढ़कर देखा तो लड़का सुख से सो रहा था और साँप मरा पड़ा था फिर तो उसे बड़ा दुख हुआ। इसी से मैं ने कहा।

और काम क्रोध औ लोभ, मद, मत्सर अरु अभिमान।
ए छः तजि संसार में सुख नित लहैं सुजान ॥

राजा ने कहा, 'मन्त्री तुम्हारा यही निश्चय है'। मन्त्री बोला, 'जो हाँ,

निश्चय दृढ़ता सुधि सुबुधि करब काज की जाँच।
मंत्र छिपावन ये सदा मंत्रिन के गुन पाँच ॥

क्योंकि बिनु बिचार कछु काज न कीजै।
तजि बिचार जनि दुख सिर लीजै ॥

सोचि बिचारि काज जो करई।
तेहि आपहि संपति नित बरई॥

और आप मेरा कहना मानें तो मेल करके चलें।

क्योंकि, काज सिद्धि के हित जतन चारि कहैं सब कोइ।
तीनि गिनावन को निरे सिद्धि साम में होइ॥

राजा ने कहा, । तो कैसे यह कर सकोगे'। मन्त्री बोला ' महाराज अभी हो जायगा।

क्योंकि, माटीघट ज्यों वेगि खल फुटैं जुरैं फिरि नाहिं।
फुटैं सहज नहिं सन्त, फिर सुगम जतन मिलि जाहिं॥

और, सहजहि मानैं मूढ़ मति, वेगहि चतुर सुजान।
ज्ञानी जड़ सन हारि हैं जतन करत भगवान॥

और सर्वज्ञ मंत्री और राजा दोनों बड़े समझदार हैं मैंने पहिले ही मेघवर्ण की बातों से जान लिया था और उनकी चालों से उनको पहिचान गया हूँ।

क्योंकि. पीठ पीछु कर्मन सुलखि गुन करिये अनुमान।
औरन की सब काम के फल ही से पहिचान॥

राजा ने कहा, 'अच्छा तो अब बहुत बढ़ाने का काम नहीं जो करना हो सो कीजिए।' इस पर गिद्ध ताल के भीतर चला। बगुले दूत ने आकर सब बात हिरण्यगर्भ से कह सुनाई। 'महाराज, गिद्ध महामन्त्री आप से मेल करने को आरहा है।' राजहंस ने कहा, 'मंत्री फिर कोई आरहा है अब क्या करैगा।' सर्वज्ञ हँस कर बोला, 'महाराज डरिए मत। दुरदर्शी बड़ा भला मानस है। फिर अपने मन में सोचा कि नासमझों की यही रीति है या तो संका ही न करैं या सब बात में संका। कहा है.

ढूँढत कुमुद कलीन हंस कोउ निसि जल माहीं।
धोखा खायो देखि तहाँ तारन परछाहीं॥

छुवै दिनहु नहिं कमल तार के भ्रम सन सोई ।
खल कुचाल मन संक सोचि सकुचै सब कोई ॥
खल सन धोखा खाय, सुजनहु जन बिससै नहीं ।
पय सन बदन जराय फूँकि फूँकि माठा पियै ॥

तो अब उसे भेट देने के लिए हीरा मोती जुटा रक्खें ।' जब सब ठीक होगया तो गढ़ के फाटक ही पर से चकवा गिद्ध को लिवा लेगया और राजा के सामने लेजाकर उसकी भेट कराई। राजाने उसे आसन पर बैठाया। चकवा बोला, "महा-मन्त्री, राज आप का है जो आज्ञा दीजिए की जाय" राजहंस बोला "बहुत ठीक है"। दूरदर्शी बोला "ठीक है पर बहुत बढ़ाने, का क्या काम है।

लोभिहि धन दै. क्रुद्ध कहँ हाथ जोरि सिर नाइ ।
बस करु मूर्ख सुनाइ पद पंडित साँच जनाइ ॥
और दान मान से भृत्य, तिय, बन्धुन आदर देइ ।
मित्र साँच सो. सील सों जग निज बस करि लेइ ॥

अब सन्धि मेल करके जाना चाहिए। राजा चित्रवर्ण बड़े प्रतापी हैं।" चकवा बोला "तो जिस रीति से मेल करना हो सो कहिए"। राजहंस बोला, "सन्धि कितनी खानि की होती है?" गिद्ध बोला, "सुनिए,

चढ़ै बली नृप, जो रहै और न जोग उपाय ।
समय बितावन को करै तुरत सन्धि नरराय ॥
है कपाल. उपहार, संगत औ सन्तानयुत ।
उपन्यास, प्रतिकार, पुरुषान्तर, आदिष्ट पुनि ॥
औरौ आठ प्रकार की सन्धि कहैं बुधलोग ।
उपग्रह, आत्मामिष गनिय परिक्रम अरु संयोग ॥
अहै स्कन्धउपनेय पुनि परभूषण उच्छन्न ।

है अदृष्टनर सोरहीं कहैं नीतिसम्पन्न ॥
निरी संधि जो करत है कहिये ताहि कपाल ।
देइ भेंट उपहार की सन्धि करैं नरपाल ॥
करि बेटी को ब्याह पुनि करैं सन्धि सन्तान ।
संगत करिकै मित्रता साधैं चतुर सयान ॥
एक प्रयोजन अर्थ इक, धरिहैं जब लगि प्रान ॥
सम्पति में कै विपति में गनि हैं कबहुँ न आन ॥
साधन में संगत अहै सुवरन सरिस अनूप ।
यहि हित काञ्चन नाम यहि बरनत हैं जगभूप ॥
साधन हित निज काज जो करैं संधि नरराय ।
उपन्यास तेहि कहत हैं नीतिनिपुन समुदाय ॥
समुझि पूर्व उपकार कछु करि हैं भला हमार ।
ऐसी करैं जो सन्धि तेहि कहैं लोग प्रतिकार ॥
आवौं यहि के काम यह ऐहै मोरे काम ।
प्रतीकार सो, कीन्ह जो बालिअनुज सँग राम ॥
हमरे तुम्हरे सुभट मिलि साधैं हमरे काम ।
पंडित जन तेहि कर कहत हैं पुरुषान्तर नाम ॥
जो निज रिपुहि बढाइए देइ भूमि इक ओर ।
कहैं ताहि आदिष्ट जो जानैं नीति अथोर ॥
संधि उपग्रह देय सब जो राखै निज प्रान ।
संधि आतमामिष जहाँ सेना को है दान ॥
सबै कोष कै अंश दै राजवचन के काज ।
नाम परिक्रम सन्धि इक करैं चतुर महराज ॥
एक अर्थ की जो क्रिया हठ करि करै प्रमान ।
कहैं ताहि सँयोग की सन्धि सुनीति सुजान ॥
रिपु सन कछु फल पाइ कै जो फल देइ समान ।

सन्धि स्कन्ध उपनेय तेहि बरनत हैं मतिमान ॥
सन्धि भूमिफल दान करि परभूषण कर लेइ ।
रिपुहि संधि उच्छन्न में हरी भरी महि देइ ॥
सन्धि अदृष्पुरुष कहैं जो निपुनन यह बात ।
तुम ही साधो काज यह नतरु सर्वे नसि जात ॥
चार खानि की और है इक सम्बन्ध लगाय ।
एक कहिय उपकार इक बैरहि मित्र बनाय ॥
कछु आपन उपकार जो प्रबल शत्रु करिजात ।
करिय तासु उपकार यह एक सन्धि विख्यात ॥
मेरे मन में है भलो सन्धि एक उपहार ।
और यहां के भेद हैं बराजि मिथ्य व्यवहार ॥
चढ़ चलो नृप बिन लिए कछु जो फिर नहिं जाय ।
संधि करिय उपहार दे दूजो नाहिं उपाय ॥

राजा ने कहा "आप लोग बड़े पण्डित हैं बताइए हम लोगों को क्या करना चाहिए।" दूरदर्शी बोला, "क्या कहैं

रोग रोय संताप से विनसै कालि कि आज ।
ऐसे तन हित को करैं जग अधर्म के काज ॥
जल में ससि छाया सरिस चञ्चल सब के प्रान ।
यह विचार नित प्रति करैं नर सब कर कल्यान ॥
जग मृग तृष्णा के सरिस छन महँ विनसत जानि ।
करिये सतसंगति सदा सकल धर्म सुखखानि ॥

मेरी बात मानिए तो यह कीजिए ।

अश्वमेधसत एक दिशि धरिय सत्य इक ओर ।
तौलत दुनहु सत्य दिसि डंडी झुकै न थोर ॥

तो साँची प्रतिज्ञा सौंह करके दोनों राजाओं के बीच में काञ्चन नाम संधि कराना चाहिए"। सर्वज्ञ, बोला "बहुत

अच्छा' । इस पर कपड़े गहने की भेंट से गिद्ध का आदर कर चकवा उसके साथ मोर राजा के पास गया । वहाँ गिद्ध के कहने से राजा चित्रवर्ण ने चकवे का बड़ा आदर किया और सन्धि करके फिर राजहंस के पास भेज दिया । दूरदर्शी बोला "महाराज, हमारे मनोरथ सब पूरे होगये अब सुख से बिन्ध्याचल को लौट चलिये ।" इस पर सब अपने अपने घर जाकर सुखसे रहने लगे । विष्णुशर्मा ने कहा, 'कहो और क्या कहूँ । राजकुमारों ने कहा गुरूजी आप की दया से हम लोगों ने राज का सब अंग जान लिया । विष्णुशर्मा ने कहा तौ भी,

भावै विजयी नृपन को सदा मेल व्यवहार ।
रहै निरापद संत, जस सुकृती लहैं अपार ॥
मंत्रिन के उर में बसै मुख चूमत दिन राति ।
नीति सदा सुख हित रहै प्रौढा तिय की भाँति ॥

इति श्री अवधवासी भूपउपनाम सीताराम कृत नई राजनीति समाप्त हुई ।

—*—

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.